पायेगा ।४३। इस कुसमय में यह कैसा प्रलयकाल उपस्थित हुआ और हमारा तुम्हारा अन्तकाल आ गया ।४४। इस समय तीनों लोकों में हमारा कोई रक्षक नहीं है, क्योंकि शिवद्रोही की रक्षा कौन कर सकता है ? ।४५। देह का नष्ट होना और यम-यातना को सहन करना यह दुःख हम से किस प्रकार भोगा जायगा ? ।४६। शिवद्रोही को देखते ही यमराज दाँत पीसते हैं और उसको गर्म तेल के कढ़ाव में डाल देते हैं ।४६। मैं शपथ से सर्वथा मुक्त हो सकता था, परन्तु दुष्ट-सङ्ग के कारण मैं उससे न निकल सका ।४८। अब यदि हम यहाँ से भागें तो भी शिव अपने आकर्षणास्त्रों से हमको खींच लेंगे ।४६।

स्वर्गे वा भुवि पातालेयत्र कुत्रापि चा यतः ।
श्रीवीरभद्रशस्त्राणां गमनं नहि दुर्लभम् ।५०।
यावतश्च गणाः सन्ति श्रीरुद्रस्य त्रिशूलिनः ।
तावतामपि सर्वेषां शक्तिरेतादृशी ध्रुवम् ।५१
श्रीकालभैरवः काश्यां नखाग्रेणैव लीलया ।
पुरा शिरश्च चिच्छेद पञ्चमं ब्रह्मणो ध्रुवम् ।५२।
एतददुक्त्वा स्थितो विष्णुरतित्रस्तमुखाम्बुजः ।
वीरभद्रोऽपि संप्राप तदैवाध्वरमंडपम् ।५३।
एवं ब्रुवति गोविन्द आगतं सैन्यसागरम् ।
वीरभद्रण सहित ददृशुश्च सुरादयः ।५४।

स्वर्ग, पृथिवी, पाताल कहीं भी चले जाँय, वीरभद्र के शस्त्र सभी स्थानों में पहुँच सकते हैं ।५०। त्रिशूलधारी भगवान् शिव के सब गणों की ऐसी ही शक्ति है ।५१। शिवजी की आज्ञा से श्रीकालभैरव ने अपने नखों से ही काशी में ब्रह्माजी का पाँचवाँ शीश काट डाला ।५२। यह कहकर नारायण अत्यन्त व्याकुल-मुख हो गये, तभी वीरभद्र भी यज्ञ-मण्डप में आ पहुँचा ।५२। साथ ही सेना रूप सागर उमड़ आया और सभी देवताओं ने वीरभद्र के साथ इस सेना को देखा ।५४।

वीरभद्र द्वारा लोकपालों की पराजय

इन्द्रोऽपि प्रहसन् विष्णुमात्मवादरतं तदा ।

वज्रपाणिः सुरैः सार्द्धं योद्धुकामोऽभवत्तदा ।१
तदेन्द्रो गजमारूढो बस्तारूढोऽनलस्तथा ।
यमो महिषमारूढो निऋतिः प्रेतमेव च ।२
पाशी च मकरारूढो मृगारूढः सदागतिः ।
कुबेरः पुष्पकारूढः संतद्धोऽभूदतन्द्रितः ।३
तथान्ये सुरसंघाश्च यक्षचारणगुह्यकाः ।
आरुह्य वाहनान्येव स्वानि स्वानि प्रतापिनः ।४
तेषामुद्योगमालोक्य दक्षश्चासृङ्मुखस्तत ।
तदन्तिकं समागत्य सकलत्रोऽभ्यभाषत ।५
युष्मद्‌बलेनैव मया यज्ञः प्रारम्भितो महान् ।
सत्कर्मसिद्धये यूयं प्रमाणाः स्युर्महाप्रभाः ।६
तच्छ्रुत्वा दक्षवचनं सर्वे देवाः सवासवाः ।
निर्ययुस्त्वरितं तत्र युद्धं कर्तुं समुद्यताः ।७

ब्रह्माजी ने कहा—उस इन्द्र ने नारायण का उपहास करते हुए आत्मप्रशंसा पूर्वक वज्र ग्रहण किया और देवताओं के सहित वीरभद्र से युद्ध करने को तत्पर हुए ।१। उस अवसर पर इन्द्र ऐरावत पर, अग्नि मेढ़े पर, यम महिष पर और निऋत प्रेत पर ।२ वरुण मकर पर, वायु मृग पर, कुबेर पुष्पक पर चढ़े तथा अन्य सभी देवता तैयार हो गए ।३। इसी प्रकार असंख्य देवता, यक्ष, चारण, गुह्यक अपने-अपने वाहनों पर चढ़कर चल दिए ।४। उनको युद्ध के लिए तत्पर देखकर नीचा मुख किये हुए दक्ष ने इन्द्र के पास आकर कहा ।५। दक्ष बोला—मैंने यह महायज्ञ आपके भरोसे पर आरम्भ किया, क्योंकि आप अत्यन्त प्रभाव वाले हैं और इस यज्ञ की सिद्धि आप पर ही निर्भर है ।६। दक्ष की बात सुनकर इन्द्र के सहित सभी देवता अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक युद्ध करने के लिए चले ।७।

अथ देवगणाः सर्वे युयुधुस्ते बलान्विताः ।
शक्रादयो लोकपाला मोहिताः शिवमायया ।८
देवानां च गजानां च तदासीत्समरो महान् ।

तीक्ष्णतोमरनाराचैर्युयुधुस्ते बलान्विताः ।६
नेदुः शंखश्च भेर्य्यश्च तस्मिन् रथमहोत्सवे ।
महादुन्दुभयो नेदुः पटहा डिंडिमादयः ।१०
तेन शब्देन महता श्लघ्यमानास्तदा सुराः ।
लोकपालैश्च सहिता जघ्नुस्तांछिवकिंकरान् ।११
इन्द्राद्यै लोकपालैश्च गणाः शंभोः पराङ्मुखाः ।
कृताश्च मुनीशार्दूल भृगोर्मन्त्रबलेन च ।१२
उच्चाटनं कृत तेषां भृगुणा यज्वना तदा ।
यजनार्थं च देवानां तुष्ट्यर्थं दीक्षितस्य च ।।१३
पराजितास्वकान्दृष्ट्वा वीरभद्रो रुषान्वितः ।
भूतप्रेतपिशाचांश्च कृत्वा तानेन पृष्ठतः ।१४

फिर वे सभी बलवान देवता युद्ध करने लगे। वे सभी इन्द्रादि के सहित शिवमाया से मोहित हो रहे थे ।८। उस समय देवताओं और शिवगणों का भयङ्कर युद्ध हुआ, वे तीक्ष्ण तोमर और नाराचों में युद्ध करने लगे ।६। उस समय शङ्ख और भेरियाँ बजने लगीं तथा दुन्दुभी, पटह और डुमडुमी भी बजीं ।१०। उस महान् शब्द से उत्साहित हुए देवता लोकपालों सहित उन शिवगणों को मारने लगे ।११। उस समय भृगु के मन्त्रबल से इन्द्रादि लोकपालों ने शिवगणों का संहार कर डाला ।१२। देव-यजन और दक्ष के सन्तोष के निमित्त यज्ञकर्त्ता भृगुजी ने सबका उच्चाटन कर दिया।१३। उन भूत, प्रेत, पिशाचों को हारता हुआ देखकर वीरभद्र ने क्रोधपूर्वक उन्हें पीछे कर दिया ।१४।

वृषभस्थान् पुरकृत्य स्वयं चैव महाबलः ।
महात्रिशूलमादाय पातयामास निर्जरान् ।१५
देवान् यक्षान् साध्यगणान् गुह्यकान् चारणानपि ।
शूलघातैश्च ते सर्वे गणाः वेगात्प्रजघ्निरे ।१६
केचिद्द्विधा कृताः खंगैर्मुद्गरैश्च विपोथिताः ।
अन्यैः शस्त्रैरपि सुरा वर्णैर्भिन्नास्तदाऽभवन् ।१७
एवं पराजिता सर्वे पलायनपरायणाः ।

परस्परं परित्यज्य गता देवास्त्रिविष्टपम् ।१८।
केवलं लोकपालास्ते शक्राद्यास्तस्थुरुत्सुकाः ।
संग्रामे दारुणे तस्मिन् धृत्वा धैर्यं महाबलाः ।१९।
सर्वे मिलित्वा शक्राद्या देवास्तत्र रणाजिरे ।
बृहस्पतिं च प्रच्छुर्विनयावनतास्तदा ।२०।
गुरो बृहस्पते तात महाप्राज्ञ दयानिधे ।
शीघ्रं वद पृच्छतो नः कुतोऽस्माकं जयो भवेत् ।२१।
इत्याकर्ण्य वचस्तेषां स्मृत्वा शम्भुं प्रयत्नवान् ।
बृहस्पतिरुवाचेद महेन्द्रं ज्ञानदुर्बलम् ।२२।

उस वृषभ में स्थित महाबली ने त्रिशूल से देवताओं को मारकर गिराना प्रारम्भ किया ।१५। देवता, यक्ष, साध्य, गुह्यक और चारणादि को त्रिशूल का प्रहार कर धराशायी कर दिया ।१६। खड्ग से किसी के दो टुकड़े किये, किसी पर मुद्गर प्रहार किया तथा अन्य शिवगणों ने भी शस्त्र प्रहार द्वारा देवताओं को विदीर्ण किया ।१७। इस प्रकार पराजित होते हुए देवता एक दूसरे को त्याग कर भागते हुए स्वर्ग को गये ।१८। तब इन्द्रादि देवताओं ने भी युद्धभूमि त्याग दी और अत्यन्त नम्रतापूर्वक बृहस्पतिजी से कहा ।१९-२०। लोकपालों ने कहा—हे गुरो ! हे महा-पण्डित ! हे दयासिन्धो ! आप शीघ्र ही हमको वह उपाय बताइये जिससे हमारी विजय हो सके । ब्राह्माजी ने कहा—उन सबकी बात सुनकर भगवान् शिव का स्मरण करके ज्ञान-दुर्बल इन्द्र से बृहस्पतिजी ने कहा ।२१-२२।

यदुक्तं विष्णुना पूर्वं तत्सर्वं जातमद्य वै ।
तदेव विवृणोमीन्द्र सावधानतया श्रृणु ।२३।
अस्ति यश्केश्वरः कश्चित् फलदः सर्वकर्मणाम् ।
कर्तारं भजते सोऽपि न स्वकर्तुः प्रभुर्हि सः ।२४।
न मन्त्रौषधयः सर्वे नाभिचारा न लौकिकाः ।
न कर्माणि न वेदाश्च न मीमांसाद्वयं तथा ।२५।
अन्यान्यपि च शस्त्राणि नानावेदयुतानि च ।

ज्ञातुं नेशं संभवंति वदंत्येवं पुरातनाः ॥२६
न स्वज्ञेयो महेशानः सर्ववेदायुतेन सः ।
भक्तैरनन्यशरणैर्नान्यथेति महाश्रुतिः ॥२७
शांत्या च परया दृष्ट्या सर्वथा निर्विकारया ।
तदनुग्रहतो नूनं ज्ञातव्यो हि सदाशिवः ॥२८
परं तु संवदिष्यामि कार्याकार्यविवक्षितौ ।
सिद्धयशं च सुरेशान तं शृणु त्व हिताय वै ॥२९

बृहस्पति बोले--हे इन्द्र ! पहिले नारायण ने जो कुछ कहा था, वही हो गया, अब तुम मेरी बात को सावधानीपूर्वक श्रवण करो। सभी कर्मों का फलदाता ईश्वर भी कर्त्ता की अपेक्षा करता है, क्योंकि स्वयं करने में वह भी समर्थ नहीं है ।२३-२४। मन्त्र, औषधि, अभिचार तथा लौकिक कर्म और वेद मीमांसा तथा वेद सम्मत अन्य सभी शास्त्र, उसके बिना कुछ नहीं हैं और न उस ईश्वर को जानने में समर्थ हैं, ऐसा विज्ञजन कहते हैं ।२५। भगवान् शंकर को सम्पूर्ण वेदों का ज्ञाता भी जानने में समर्थ नहीं, उन्हें तो केवल उन्हीं की शरण को प्राप्त भक्त जान सकता है ।२६। शान्त, निर्विकार पर दृष्टि होने तथा उनकी कृपा होने पर ही शिव तत्त्व का ज्ञान हो सकता है। फिर भी, हे इन्द्र ! कार्य-अकार्य के निर्णय में सिद्ध हुए अंश को मैं तुमसे कहता हूँ, सावधानी से सुनो ।२७-२९।

त्वमिंद्र बालिशो भूत्वा लोकपालैः सहाद्यवै ।
आगतो दक्षयज्ञं हि किं करिष्यासि विक्रमम् ॥३०
एते रुद्रसहायाश्च गणाः परमकोपनाः ।
आगता यज्ञविघ्नार्थं तं करिष्यंत्यसंशयम् ॥३१
सर्वथा न ह्युपायोऽत्र केषांचिदपि तत्त्वत. ।
यज्ञविघ्नविनाशार्थं सत्यं सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥३२
एवं बृहस्पतेर्वाक्यं श्रुत्वा ते हि दिवौकसः ।
चिंतामापेदिरे सर्वे लोकपालाः सत्रासत्राः ॥३३
ततोऽब्रवीद्वीरभद्रो महावीरगणैर्वृतः ।

इन्द्रादींल्लोकपालांस्तान् स्मृत्वा मनसि शंकरम् ।।३४
सर्वे यूयं बालिशत्वादवदानार्थ मागताः ।
अवदानं प्रयच्छामि आगच्छत समांतिकम् ।।३५
हे शक्र हे शुचे भानो हे शशिन् हे धनाधिप ।
हे पाशपाणे हे वायो निर्ऋते यम शेष हे ।३६

हे इन्द्र ! तुम लोकपालों सहित मूर्खतावश इस यज्ञ में आये हो तो भला तुम क्या पराक्रम करने में समर्थ हो ? रुद्र के अत्यन्त क्रोध वाले यह गण यज्ञ को विध्वंस करने आये हैं तो अपना कार्य अवश्य करेंगे । ३० । मैं तुम से सत्य ही कहता हूँ कि इस यज्ञ के विध्वंस को रोकने का कोई भी उपाय नहीं है । ३२ । ब्रह्माजी ने कहा कि वे सभी देवता बृहस्पति जी की बात सुनकर इन्द और लोकपालों सहित चिन्ता मग्न हो गए । ३२ । तभी अत्यन्त क्रोधपूर्वक उस महाबली वीरभद्र ने इन्द्रादि लोकपालों से कहा । ३३ । वीरभद्र बोला—तुम सब अपनी मूर्खता से इस यज्ञ में आये हो । इसका उत्तम फल तुमको चखाऊँगा । हे इन्द्र ! अग्ने ! सूर्य, चन्द्र, कुबेर, वरुण, वायो, निर्ऋति यम और शेष। ३४-३६

हे सुरासुरसंघा हीहैत यूयं हे विचक्षणाः ।
अवदानानि दास्यामि आतृप्त्याद्यासतां वरान् ।।३७
एवमुक्त्वा सितैर्बाणैर्जघानाथ रुषान्वितः ।
निखिलांस् ान् सुरान् सद्यो वीरभद्रो गणाग्रणीः ।
तैर्बाणैर्निहताः सर्वे वासवाद्याः सुरेश्वराः ।।३८
पलायनपरा भूत्वा जग्मुस्ते च दिशो दश ।
गतेषु लोकपालेषु बिद्रतेषु सुरेषु च ।
यज्ञवाटोपकंठे हि वीरभद्रोऽगमद्गणैः ।।३९
तदा ते ऋषयः सर्वे सुभीता हि महेश्वरम् ।
विज्ञप्तुकामाः सहसा शीघ्रमूचुर्नता भृशम् ।।४०
देवदेव रमानाथ सर्वेश्वर महाप्रभो ।
रक्ष यज्ञं हि दक्षस्य यज्ञोऽसि त्वं न संशयः ।।४१
यज्ञकर्मा यज्ञरूपो यज्ञांगो यज्ञरक्षकः ।

रक्ष यज्ञमतो रक्ष त्वत्तोऽन्यो नहि रक्षकः ॥४२
इत्याकर्ण्य वचस्तेषामृषीणां वचनं हरिः ।
योद्धुकामो भयाद्विष्णुर्वीरभद्रेण तेन वै ॥४३

हे सुरो ! हे चतुरो ! तुम्हें मैं अब इसका फल देता हूं, भले प्रकार उसका भोग करो। ब्रह्माजी ने कहा—यह कह कर वीरभद्र तीक्ष्ण वाणों से देवताओं पर प्रहार करने लगा। उस समय उनकी चोट से इन्द्रादि देवता अत्यन्त व्यथित हुए। ३७। फिर वे दशों दिशाओं में भागने लगे। लोकपालों को भागा हुआ देखकर वीरभद्र गणों के सहित यज्ञशाला में आया। ३८। तब सभी ऋषि भगवान् नारायण के पास पहुँचे और भय के कारण शीघ्रता से बोले। ३९। ऋषियों ने कहा—हे लक्ष्मीपते ! हे महाप्रभो ! आप साक्षात् यज्ञ स्वरूप हैं, दक्ष के इस यज्ञ की रक्षा कीजिए। ४०। आप ही यज्ञ के अंग, यज्ञ स्वरूप तथा यज्ञ रक्षक हैं, अतः आप यज्ञ की रक्षा कीजिए, आप के अतिरिक्त कौन रक्षा करने में समर्थ है ? ।४१। ब्रह्माजी ने कहा—उन ऋषियों के यह वचन सुनकर वीरभद्र से भयभीत हुए विष्णु उससे युद्ध करने का विचार करने लगे। ४२-४३।

चतुर्भुजः सुसंनद्धो चक्रायुधधरः करैः ।
महाबलोऽमरगणैर्यज्ञवाटात्स निर्ययौ ॥४४
वीरभद्रः शूलपाणिर्नानाबलसमन्वितः ।
ददर्श विष्णुं संनद्धं योद्धुकामं महाप्रभुम् ॥४५
तं दृष्ट्वा वीरभद्रोऽभूद्भ्रुकुटीकुटिलाननः ।
कृतांत इव पापिष्ठं मृगेन्द्र इव वारणम् ॥४६
तथाविधं हरिं दृष्ट्वा वीरभद्रोऽरिमर्दनः ।
अवदत्त्वरितः क्रुद्धो गणैर्वीरैः समावृतः ॥४७
रे रे हरे महादेवशपथोल्लंघनं त्वया ।
कथमद्य कृतं चित्त गर्वः किमभवत्तव ॥४८
तव श्रीरुद्रशपथोल्लंखन शक्तिरस्ति किम् ।
को वा त्वमसि को वा ते रक्षकोऽस्ति जगत्त्रये ॥४९

अत्र त्वमागतः कस्माद्वयं तन्नैव विद्महे ।
दक्षस्य यज्ञपाता त्वं कथं जातोऽसि तद्वद ॥५०

वे चार भुजाधारी, सुदर्शन चक्र धारण किये, महाबलवान देवताओं को साथ लेकर यज्ञशाला से बाहर निकले । इधर गणों के सहित त्रिशूल हाथ में लिए वीरभद्र ने विष्णु को युद्ध की इच्छा से आते देखा ।४४। विष्णु को देखते ही वीरभद्र ने टेढ़ी भौंह करके उन्हें देखा, जैसे काल किसी पापी को अथवा सिंह किसी हाथी को देखता है ।४५। इस प्रकार वीरों से घिरे शत्रु संहारक वीरभद्र ने विष्णु की ओर देखा और क्रोधपूर्वक शीघ्रता से कहा ।४६। हे विष्णो ! तुमने शंकर की शपथ का उल्लंघन, किस अभिमान के वशीभूत होकर किया है ? ।४७। क्या शिवजी की शपथ को तोड़ने में तुम समर्थ हो ? तुम कौन हो ? तीनों लोकों में तुम्हारी रक्षा करने वाला कौन है ? ।४८। मैं नहीं जानता कि तुम यहाँ कैसे आये ? तुम दक्ष-यज्ञ की रक्षा कैसे कर सकते हो ? यह मुझे बताओ ।४९-५०।

दाक्षायण्या कृतं यच्च तन्न दृष्टं किमु त्वया ।
प्रोक्तं यच्च दधीचेन श्रुतं तन्न किम त्वया ॥५१
त्वञ्चापि दक्षयज्ञेऽस्मिन्नवदानार्थमागतः ।
अवदानं प्रयच्छामि तव चापि महाभुज ॥५२
वक्षो विदारयिष्यामि त्रिशूलेन हरे तव ।
कस्तवास्ति समायातो रक्षकोऽद्य ममांतिकम् ॥५३
पातयिष्यामि भूपृष्ठ ज्वालयिष्याति वह्निना ।
दग्धं भवंतमधुना पेषयिष्यामि सत्वरम् ॥५४
रे रे हरे दुराचार महेशविमुखाधम ।
श्रीमहारुद्रमाहात्म्यं किन्न जानासि पावनम् ॥५५
अथापि त्वं महाबाहो योद्धुकोऽग्रतः स्थितः ।
नेष्यामि पुनरावृत्ति यदि तिष्ठेस्त्वमात्मना ॥५६
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा वीरभद्रस्य बुद्धिमान् ।
उवाच विहसनप्रोत्या विष्णुस्तत्र सुरेश्वरः ॥५७

सती ने जो कुछ किया, क्या उसे तुमने नहीं देखा ? क्या दधीचि के वाक्यों को तुमने नहीं सुना ? क्या तुम भी दक्ष के यज्ञ में कुत्सित दान ग्रहण करने आये हो ? लो तुम्हें मैं इसका कुत्सित दान देता हूँ। ५। हे विष्णो ! मैं तुम्हारे हृदय को त्रिशूल से विदीर्ण कर दूँगा, तुम्हारा जो रक्षक हो, उसे भी मेरे निकट बुला लो ।५२। मैं तुम्हें पृथिवी में डाल कर जला दूँगा तथा भस्म करके पीस डालूँगा। ५३। हे दुराचारी विष्णो ! हे शिव-विमुख अधम ! क्या तुम शिवजी के पवित्र माहात्म्य से अनभिज्ञ हो ? ।५४। फिर भी तुम युद्ध की इच्छा से आगे बढ़े हो, यदि यहाँ ठहरे तो मैं तुम्हें ऐसे स्थान को भेज दूँगा, जहाँ से फिर लौटना न पड़े। ५५। ब्रह्माजी ने कहा—वीरभद्र की बात सुनकर देवाधिदेव भगवान् विष्णु हँसते हुए बोले ।५६–५७।

शृणु त्वं वीरभद्राद्य प्रवक्ष्यामि त्वदग्रतः ।
न रुद्रविमुखं मां त्वं वद शंकरसेवकम् ।।५८
अनेन प्रार्थितः पूर्वं यज्ञार्थं च पुनः पुनः ।
दक्षेणाविदितार्थेन कर्मनिष्ठेन मौढ्यतः ।।५९
अहं भक्तपराधीनस्तथा सोऽपि महेश्वरः ।
दक्षो भक्तो हि मे तात तस्मादत्रागतो मखे ।।६०
शृणु प्रतिज्ञां से वीर रुद्रकोपसमुद्भव ।
रुद्रतेजःस्वरूपो हि सुप्रतापालाय प्रभो ।।६१
अहं निवारयामि त्वां त्व च मां विनवारय ।
तद्भविष्यति यद्भावि करिष्येऽह पराक्रमम् ।।६२
इत्युक्तवति गोविन्दे प्रहस्य स महाभुजः ।
अवदत्सुप्रसन्नोऽस्मि त्वां ज्ञात्वाऽस्मत्प्रभोः प्रियम् ।।६३
ततो विहस्य सुप्रीतो वीरभद्रा गणागणीः ।
प्रश्रयावनतोऽवादीद्विष्णुं देवं हि तत्त्वतः ।।६४

बिष्णु ने कहा—हे वीरभद्र ! मैं तुम्हारे प्रति तत्व कहता हूं, तुम मुझ शिव-सेवक को शिव के विरुद्ध मत समझो। इस दक्ष ने यज्ञ के लिए बहुत बार प्रार्थना की थी, अवश्य ही यह कर्मनिष्ठ है, परन्तु

मूर्खता कर बैठा है । ५८ । मैं भक्तों के आधीन हूं, शिवजी भी भक्तों के आधीन हैं । दक्ष मेरा भक्त है, इसीलिए उसके यज्ञ में मैं आया हूँ ।५६। तुम रुद्र कोप से उत्पन्न हुए हो, शिव प्रताप के निवाए तथा उन्हीं के तेज से प्रकट हो, मेरी प्रतिज्ञा को सुनो । ६० । मैं तुमको निवारण करूँ और तुम मुझे निवारण करो, फिर जो होना है वह तो होगा ही । मैं पराक्रम करूँगा । ६१ । ब्रह्माजी ने कहा—नारायण के इस प्रकार कहने पर महाभुज वीरभद्र ने कहा कि आपको अपने प्रभु का प्रिय जान कर मैं प्रसन्न हूँ । ६२ । फिर गणों में अग्रणी वीरभद्र अम्रतापूर्वक भगवान् विष्णु से कहने लगा । ६३-६४ ।

तव भावपरीक्षार्थमित्युक्तं मे महाप्रभो ।
इदानीं तत्त्वतो वच्मि शृणु त्वं सावधानतः ॥६५
यथा शिवस्तथा त्वं हि यथा त्वं च तथा शिवः ।
एति वेदा वर्णयति शिवशासनतो हरे ॥६६
शिवाज्ञया वयं सर्वे सेवकाः शंकरस्य वैः ।
तथापि च रमानाथ प्रवादोचितमादरान् ॥६७
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य वीरभद्रस्य सोऽच्युतः ।
प्रहस्य चेदं प्रोवाछ वीरभद्रहितं वचः ॥६८
युद्धं कुरु महावीर माया सार्द्धमशंकितः ।
तवास्त्रैः पूर्यमाणोऽहं गमिष्यामि स्वमाश्रमम् ॥६९
इत्युक्त्वा विरम्यासौ सन्नद्धोऽभूद्रणाय च ।
स्वगणैर्वीरभद्रोऽपि सन्नद्धोऽभून्महाबलः ॥७०

उसने कहा—हे प्रभो ! आपकी भाव-परीक्षा के लिए ही मैंने वह बात कही थी, अब मैं जो बात विचारपूर्वक कह रहा हूँ उसे ध्यान से सुनो । जैसे शिव हैं, वैसे ही आप हैं और जैसे आप वैसे ही शिव हैं शिवजी की आज्ञा से वेदों का ऐसा कथन है । ६५ । हे लक्ष्मीपते ! शिवाज्ञा से हम सभी उनके सेवक हैं, इसलिये आदर सहित यह बात कहना उचित है । ६६ । ब्रह्माजी ने कहा—वीरभद्र की बात सुनकर भगवान् विष्णु ने हँसते हुए वीरभद्र के प्रति कहा । ६७ । विष्णु ने

कहा—हे महाबले ! शंका रहित होकर मेरे साथ युद्ध करो, मैं तुम्हारे अस्त्रों से परिपूर्ण होकर अपने स्थान को गमन करूँगा । ६८ । ब्रह्माजी ने कहा—यह कह कर विष्णु भगवान् संग्राम के लिए तत्पर हुए तथा महाबली वीरभद्र भी अपने गणोंके सहित युद्धके लिए तत्पर हुआ ।६९-७०।

।।देवताओं की पराजय और दक्ष का सिर का काटा जान ।।

वीरभद्रोऽथ युद्धे वै विणुना महाबलः ।
सस्मृत्य शंकरं चित्ते सर्वापद्विनिवारणम् ।।१
आरुह्य स्यंदनं दिव्यं सर्ववैरिविमर्दनः ।
गृहीत्वा परमास्त्राणि सिंहनादं जगर्ज ह ।।२
विष्णुश्चापि महाघोषं पांचजन्याभिधं निजम् ।
दध्मौ बली महाशंखं स्वकीयान् हर्षयन्निव ।।३
तच्छ्रुत्वा शंखनिर्ह्रादं देवा ये च पलायिताः ।
रणं हित्वा गत पूर्वं ते द्रुतं पुनरायय ।।४
वीरभद्रगणैस्तेषां लोकपालाः सवासवाः ।
युद्धाञ्चक्रुस्तथा सिंहनादं कृत्वा बलान्विताः ।।५
गणानां लोकपालानां द्वंद्वयुद्धं भयावहम् ।
अभवत्तत्र तुमुलं गर्जतां सिंहनादतः ।।६
नंदिना युयुधे शक्रोऽनलो वै चाश्मना तथा ।
कुबेरोऽपि हि कूष्मांडपतिना युयुधे बली ।।७

ब्रह्माजी ने कहा—उस समय वीरभद्र भगवान् शंकर का स्मरण करता हुआ नारायण के साथ संग्राम करने को तत्पर हुआ । १ । सब शत्रुओं का संहारक वीरभद्र दिव्य रथ पर आरूढ़ होकर परम अस्त्र ग्रहण करता हुआ सिंहनाद करने लगा । २ । इधर महाबली नारायण ने अपने पक्ष के देवताओं को साथ ले पाँचजन्य शंख का महानाद किया । ३ । जो देवता रण-भूमि से भाग गये थे, वे उस शंखनाद को सुनकर पुनः आगये । ४ । फिर इन्द्रादि सभी लोकपाल उच्च स्वर से सिंहनाद कर वीरभद्र के साथ संग्राम करने लगे । ५ । सिंहनाद करके

गरजते हुए गणों और लोकपालों का अत्यन्त भयानक संग्राम हुआ ।६। नन्दी के साथ इन्द्र, अनल के साथ वैष्णव और कूष्माण्डपति के साथ कुबेर आदि का संग्राम होने लगा ।७।

तदेन्द्रेण हतो नन्दी वज्रेण शतपर्वणा ।।८
नन्दिना च हतः शक्रस्त्रिशूलेन स्तनांतरे ।।९
बलिनौ द्वावपि प्रीत्या युयुधाते परस्परम् ।
ताना घातानि कुर्वंतौ नन्दशक्रौ जिगीषया ।।१०
शक्त्या जघान चाश्मानं परमकोपनः ।
सोऽपि शूलेन तं वेगाच्छितधारेण पावकम् ।।११
यमेन सह संग्रामं महालोको गणाग्रणीः ।
चकार तुमुलं वीरो महादेवं स्मरन्मुदा ।।१२
नैर्ऋतेन समागम्य चंडश्च बलवत्तरः ।
युयुधे परमास्त्रैश्च नैर्ऋति निविडंबयन् ।।१३
वरुणेन समं वीरो मुंडश्चैव महाबलः ।
युयुधे परया शक्त्यां त्रिलोकीं विस्मयन्निव ।।१४

इन्द्र ने अपने सौ पर्व वाले वज्र से नन्दी पर आघात किया । ८ । नन्दी ने भी अपने त्रिशूल से इन्द्र की छाती पर प्रहार किया । ९ । दोनों वीर अत्यन्त उत्साहपूर्वक परस्पर संग्राम करने लगे । नन्दी और इन्द्र दोनों ही एक दूसरे को हराने के विचार से अनेक कौशल कर रहे थे । १० । अत्यन्त क्रोधी अग्नि ने अश्मा को शक्ति से मारा और उसने भी अत्यन्त वेग से अपने सौधार वाले त्रिशूल से अग्नि पर प्रहार किया । ११ । यम के साथ महालोक नामक गण भगवान् शिव का स्मरण करता हुआ युद्ध कर रहा था । १२ । वीर चण्ड ने नैर्ऋत के साथ परमास्त्रों से युद्ध प्रारम्भ किया । १३ । वरुण से वीरमुण्ड भिड़ गया इनके युद्ध-कौशल से तीनों लोक विस्मयपूर्ण थे ।१४।

वायुना च हतो भृङ्गी स्वास्त्रेण परमौजसा ।
भृङ्गिणा च हतो वायुस्त्रिशूलेन प्रतापिना ।।१५

कुवेरणैव संगम्य कूष्मांडपतिरादरात् ।
युयुधे बलवान्वीरो ध्यात्वा हृदि महेश्वरम् ।।१६
योगिनीचक्रसंयुक्तो भैरवीनायको महान् ।
विदार्य्य देवानखिलान् पपौ शोणितमद्भुतम् ।।७
क्षेत्रपालास्तथा तत्र बुभुक्षः सुरपुंगवान् ।
काली चापि विदार्यैव तान्पपौ रुधिरं बहु ।
अथ विष्णुर्महातेजा ययुधे तैश्च शत्रुहा ।
चक्रं चिक्षेप वेगेन दहन्विव दशो दिशा ।।१६
क्षेत्रपालः समायांतं चक्रमालोक्य वेगतः ।
तत्रागत्यागतो वीरश्चाग्रसत्सहसा बली ।।२०
चक्रं ग्रसितमालोक्य विष्णुः परपुञ्जयः ।
मुख तस्य परामृज्य तयुद्गालितवानरिम् ।।२१

भृंगी पर वायु ने अपने परमास्त्र का प्रयोग किया और वायु पर भृंगी ने अपने अत्यन्त प्रतापी त्रिशूल से प्रहार किया । १५ । कूष्माण्ड-पति ने अत्यन्त उत्साह से शिवजी का ध्यान कर कुबेर के साथ युद्ध किया । १६ । योगिनी चक्र सहित भैरवी ने सब देवताओं को द्रवित कर उनका रक्त पीना आरम्भ कर दिया । १७ । इसी प्रकार क्षेत्रपाल ने भी देवताओं का भक्षण आरम्भ किया और काली भी उनका हृदय विदीर्ण कर रक्तपान करने लगी । १८ । इधर भगवान् नारायण की युद्ध रत हुए दशों दिशाओं को भस्म करते हुए चक्र से प्रहार करने लगे । १६ । उस चक्र को वेगपूर्वक आता हुआ देखकर क्षेत्रपाल ने सम्मुख होकर उसका ग्रास कर लिया । २० । शत्रु पुरों के विजेता नारायण ने जब अपने चक्र का ग्रास हुआ देखा, तब उसके मुख को पकड़ कर चक्र को उगलवाया । २१ ।

स्वचक्रमादाय महानुभावश्चचुकोप चातीव भवैकभर्त्ता ।
महाबली तैर्युयुधे प्रवीरैः संक्रुद्धनानायुधधारकोऽस्त्रैः ।।२२
चक्रे महारणं विष्णुस्तैः सार्द्धं युयुधे मुदा ।
नाना युधानि सक्षिप्य तुमुलं भीमविक्रमम् ।।२३

अथ ये भैरवाद्याश्च युयुधुस्तेन भूरिशः ।
नानास्त्राणि विमुंचंतः संक्रुद्धाः परमौजसा ।।२४
इत्थं तस्यां रण दृष्ट्वा हरिणाऽतुलतेजसा ।
विनिवृत्य समागम्य तान्स्वयं युयुधे बली ।।२५
अथा विष्णुर्महातेजाश्चक्रमुद्यम्य मूर्छितः ।
युयुधे भगवांस्तेन वीरभद्रेण माधवः ।।२६
तयोः समभवद्युद्धं सुघोरं रोमहर्षणम् ।
महाविरब्धिपत्योस्तु नानास्त्रधरयोर्मुने ।।२७
विष्णोर्योगबलात्तस्य देहादेव सुदारुणाः ।
शंखचक्रगदाहस्ता असंख्याताश्च जज्ञिरे ।।२८

फिर जगदीश्वर विष्णु अत्यन्त क्रोध में भरकर अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र धारण कर वेग से युद्ध करने लगे । २२ । उत्साहपूर्वक संग्राम करते हुए भगवान् को बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने अनेक प्रकार के शस्त्रास्त्र चलाये । २३ । भैरव आदि अत्यन्त क्रोधपूर्वक उनके युद्ध करते हुए शस्त्र चलाने लगे । २४ । इस प्रकार उनका युद्ध देखकर भगवान् विष्णु भी पुनः वेग से संग्राम करने लगे । २५ । फिर उन्होंने सुदर्शन चक्र ग्रहण कर अत्यन्त वेगपूर्वक वीरभद्र के साथ युद्ध प्रारम्भ किया । २६ । उन दोनों में अत्यन्त घोर संग्राम हुआ उस समय नारायण ने अनेक प्रकार के अस्त्रों से प्रहार किया । २७ । विष्णुजी के देह से योगबल के कारण शंख, चक्र और गदाधारी असंख्य वीर उत्पन्न हो गए । २८ ।

ते चापि युयुधुस्तेन वीरद्रेण भाषता ।
विष्णुवद्बलवतो हि तानायुधधरा गणाः ।।२९
तान्सर्वानपि वीरोऽसौ नारायणसमप्रभान् ।
भस्मीचकार शूलेन हत्वा स्मृत्वा शिवं प्रभुम् ।।३०
ततश्चोरसि तं विष्णुं जीलयेव रणाजिरे ।
जघान वीरभद्रो हि त्रिशूलेन महाबली ।।३१
तेन घातेन सहसा विहतः पुरुषोत्तमः ।

पपात च तदा भूमौ विसंज्ञोऽभून्मुने हरिः ॥३२
ततो जज्ञेऽद्भुत तेजः प्रलयानलसन्निभम् ।
त्रैलोक्यदाहकं तीव्रं वीराणामपि भीकरम् ॥३३
क्रोधरक्तेक्षणः श्रीमान् पुनरुत्थाय स प्रभुः ।
प्रहर्तुं चक्रमुद्यम्य ह्यतिष्ठत्पुरुषर्षभः ॥३४
तस्य चक्रं महारौद्रं कालादित्यसमप्रभम् ।
व्यष्टभयददीनात्मा वीरभद्रः शिवः प्रभुः ॥३५

वे सभी नारायण के समान महाबली और अनेक प्रकार के हथियार धारण किए हुए थे, वे सब वीरभद्र के साथ भिड़ गए । २९ । वे सभी महाबली भगवान् के समान ही प्रभावशाली थे परन्तु वीरभद्र ने रुद्र का स्मरण कर उन सभी को त्रिशूल से भस्म कर दिया । ३० । फिर उस महाबली वीरभद्र ने भगवान् विष्णु पर अपने त्रिशूल से प्रहार किया । ३१ । उस आघात से ताडित हुए नारायण सहसा मूर्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़े । ३२ । उस समय वीरों के लिए भयदायक प्रलयाग्नि के समान तीनों लोकों को भस्म करने वाला तेज प्रकट हुआ । ३३ । क्रोध के कारण रक्त-वर्ण हुए नेत्र वाले भगवान् विष्णु पुनः उठकर चक्र ग्रहण कर वीरभद्र को मारने के लिए उद्यत हुए ।३४। वीरभद्र ने काल-रूपी सूर्य के समान कान्तिमान होकर उस चक्र को स्तम्भित कर दिया । ३५ ।

मुने शंभोः प्रभावात्तु यायेशस्य महाप्रभोः ।
न चचाल हरेश्चक्रं करस्थं स्तंभितं ध्रुवम् ॥३६
अथ विष्णुगणेशेन वीरभद्रेण भाषता ।
अतिष्ठत्स्तंभिस्तेन शृंगवानिब निश्चलः ॥३७
ततो विष्णुः स्तंभितो हि वीरभद्रेण नारद ।
यज्वोपमंणिमनो नीरस्तंभनकारकम् ॥३८
ततः स्तंभननिर्मुक्तः शार्ङ्गधन्वा रमेश्वरः ।
शार्ङ्गं जग्राह स क्रुद्धः स्वधनुः सशरं मुने ॥३९
त्रिभिश्च धर्षितं बाणस्तेन शार्ङ्गधनुर्हरेः ।

वीरभद्रेण तत्तात त्रिधाऽत्तभूत्क्षणान्मुने ।।४०
अथ विष्णुर्महावाण्या बोधितस्तं महागणम् ।
असह्यवर्चस ज्ञात्वा ह्यंतर्धातुं मनो दधे ।।४१
ज्ञात्वा च तत्सर्वमिदं सतीकृतं दुष्प्रसहं परेषाम् ।
गताः स्वलोकंस्वगणान्वितास्तुस्मृत्वाशिवंसर्वपतिस्वतंत्रम् ।।४२

भगवान् माया के स्वामी शिवजी के प्रभाव से विष्णु के हाथ का सुदर्शन चक्र स्तंभित हो गया। ३६। उस समय गणेश्वर वीरभद्र के द्वारा स्तंभित हुए भगवान् नारायण पर्वत के समान निश्चल हो गए।३७। हे नारदजी ! जब वीरभद्र ने विष्णु को स्तंभित कर दिया, तब वे यज्ञ-मन्त्र के द्वारा स्तंभन से मुक्त हुए। ३८। जब शार्ंगधनुधारी भगवान् स्तंभन से मुक्त हो गए तब उन्होंने शार्ंगधनुष ग्रहण कर उस पर बाण चढ़ाया । ३९। उस धनुष से निकले हुए तीन बाणों से ताडित हुए वीरभद्र ने उनको तीन प्रकार से ही काट डाला। ४०। तब मैंने और सरस्वती ने उस गण के विषय में विष्णु को बताया और उसे असह्य तेज वाला बताकर अन्तर्धान होने का संकेत किया।४१। तब सती मरण के दुःसह पाप को जानकर भगवान् विष्णु अपने स्वामी शिवजी का स्मरण करते हुए अपने किंकरों सहित निज लोक को गये । ४२।

सत्यलोकगतश्चाहं तुत्रशोकेन पीडितः ।
अचिंतयं सुदुःखार्तो मया किं कार्यमद्य वै ।।४३
विष्णो मयि गये चैव देवाश्च मुनिभिः सह ।
विनिर्जिता गणैः सर्वे ये ते यज्ञोपवजीविनः ।।४४
तमुपद्रवमालक्ष्य विध्वस्तं च महामखम् ।
मृगस्वरूपा यज्ञो हि महाभीतोऽपि दुद्रुवे ।।४५
तं तदा मृगरूतेण धावंतं गगनं प्रति ।
वीरभद्रः समादाय विशिरस्कमथाकरोत् ।।४६
ततः प्रजापति धर्मं कश्यपं च प्रगृह्य सः ।
अरिष्टनेमिन वीरो बहुपुत्र मुनीश्वरम् ।।४७
मुनिमंगिरसं चैव कृशाश्व च महागणः ।

जघान मूर्ध्नि पादेन दत्त च मुनिपुंगवम् ।।४८
सरस्वत्याश्च नासाग्रं देवमातु तथैव च ।
चिच्छेद करजाग्रेण वीरभद्रः प्रतापवान् ।।४६

मैं भी पुत्र शोक में सन्तप्त हुआ सत्य-लोक को गया और दुःखी चित्त से सोचने लगा कि अब क्या किया जाय ? । ४३ । जब मैं और विष्णुजी वहां से चले गये तब वीरभद्र ने यज्ञ के सब देवताओं और मुनियों पर विजय प्राप्त कर ली । ४४ । इस घोर उत्पात और यज्ञ को ध्वस्त हुआ देखकर यज्ञ भी अत्यन्त भयभीत होकर मृग रूप धारण कर वहाँ से भाग गया । ४५ । जब मृग रूप धारण कर वह आकाश मार्ग में दौड़ा तभी वीरभद्र ने पकड़कर उसका शीश काट डाला । ४६ । फिर प्रजापति, धर्म, कश्यप, अरिष्टनेमि और बहुपुत्र मुनि । ४७ । आँगिरस और कृशाश्वमुनि को पकड़ कर इनके शिरों पर पाँव की ठोकर मारी । ४८ । सरस्वती, देवमाता की नाक का छेदन कर दिया, वीरभद्र ने यह कार्य अपने हस्तकौशल से किया । ४६ ।

ततोऽन्यानपि देवादीन् विदार्य पृथिवीतले ।
पातयामास सोऽयं वै क्रोधाक्रांतातिलोचनः ।।५०
बीरभद्रो विदार्य्यापि देवान्मुख्यान्मुनीनपि ।
नाभूच्छ्रातो द्रुतक्रोधः फणिराढिव मंडितः ।।५१
वीरभद्रोद्धृताराति: केसरीवव नद्विपान् ।
दिशो विलोकयामास कः पुत्रास्तीत्यनुक्षणमू ।।५२
व्यपोथयद्भृगुं यावन्मणिभद्रः प्रतापवान् ।
पदाक्रम्योरसि तदाऽकाषीत्तच्छ्मश्रुलचनम् ।।५३
चडश्चोत्पाटयामास पूष्णो दंतान् प्रवेगतः ।
शप्यमाने हरे पूर्वं योऽहसद्दर्शयन्दतः ।।५४
नन्दी भगस्य नेत्रे हि पातितस्य रुषा भुवि ।
उज्जहार दक्षमक्ष्णा यः शपंतमसूसुचत् ।।५५
विडंबिता स्वधा तत्रसा स्वाहा दक्षिणा तथा ।
मंत्रास्तंत्रास्तथा च न्ये तत्रस्था गणनायकः ।।५६

जननं मरणं द्वन्द्वं मायाचक्रमितीरितम् ।
शिवस्य मायाचक्रे हि बलिपीठं तदुच्यते ।।५७
बलिपीठं समारभ्य प्रादक्षिण्यक्रमेण वै ।
पदे पदांतरं गत्वा बलिपीठं समाविशेत् ।।५८
नमस्कारं ततः कुर्यात्प्रदक्षिणमितीरितम् ।।
निर्गमाज्जननं प्राप्तनत्रस्त्वात्मसमर्पणम् ।।५९

जन्म और मरण को माया-चक्र कहते हैं तथा शिवजी का माया-चक्र बलि पीठ कहा जाता है ।।५७।। बलि पीठ से प्रारम्भ करके प्रदक्षिणा के क्रम से दो चरण चलकर बलि पीठ के समीप पहुंचे ।।५८।। नमस्कार करने को प्रदक्षिणा कहते हैं । प्रदक्षिणा फिरने को जन्म तथा नमस्कार करने को आत्म-समर्पण कहा गया है ।।५९।।

।। वैदिक पार्थिव पूजन ।।

अथ वैदिकभक्तानां पार्थिवार्चा निगद्यत ।
वैदिकेनैव मार्गेण भुक्तिमुक्ति प्रदायिनी ।।१
सूत्रोक्तविधिना स्नात्वा संध्यां कृत्वा यथाविधि ।
ब्रह्मयज्ञं विधायादौ ततस्तर्पणमाचरेत् ।।२
नैत्यिकं सकलं कामं विधायानंतरं पुमान् ।
शिवस्मरणपूर्वं हि भस्मरुद्राक्षधारकः ।।३
वेदोक्तविधिना सम्यक्संपूर्णफलसिद्धये ।
पूजयेत्परया भक्त्या पार्थिवं लिंगमुत्तमम् ।।४
नदीतीरे तडागे च पर्वते काननेऽपि च ।
शिवालये शुचौ देशे पार्थिवार्चा विधीयते ।।५
शुद्धप्रदेशसंभुतां मृदमाहृत्य यत्नतः ।
शिवलिङ्गं प्रकल्पेत सावधानतया द्विजाः ।।६
विप्रे गौरा स्मृता शोणा बाहुजे पीतवर्णका ।
वैश्ये कृष्णा पादजाते ह्यथवा यत्र या भवेत् ।।७

सूतजी ने कहा—वेद ज्ञाता भक्तों को पार्थिव पूजा कहा है । वैदिक मार्ग वाली पूजा भुक्ति-मुक्ति की दाता है ।।१।। अपने सूत्र के

लाया । ५८ । और कपोल पकड़ बर उस पर खड्ग से वार किया, परन्तु योगबल के कारण उसका शीश अभेद्य हो गया था । ५९ । जब वीरभद्र ने शस्त्रास्त्रों से उसके शिर का काटा जाना असम्भव देखा तब उसको छाती पर पाँव रखकर हाथ से शिर नोंच डाला । ६० । और उस शिव द्रोही के शिर को उसने अग्नि कुण्ड में डाल दिया । ६१ । उस समय त्रिशूल घुमाता हुआ वीरभद्र युद्ध स्थल में अत्यन्त सुशोभित हुआ तथा युद्ध की सवर्तागिन क्रोध पूर्वक सब कुछ भस्म करने लगी । ६२ । इस प्रकार वीरभद्र ने उन सबको उस जलती हुई अग्नि में शलभ के समान भस्म कर डाला । ६३ ।

वीरभद्रस्ततो दग्धान्दृष्ट्वा दक्षपुरोगमान् ।
अट्टाट्टहासमकरोत्पूरयश्च जगत्त्रयम् ॥६४
वीरश्रिया वृतस्तत्र ततो नन्दनसंभवा ।
पुष्पवृष्टिरभूद्दिव्या वीरभद्रे गणान्विते ॥६५
ववुर्गन्धवहाः शीताः सुगन्धासुखदाः शनैः ।
देवदुंदुभयो नेदुः सममेव ततः परम् ॥६६
कैलासं स ययौ वीरः कृतकार्य्यस्ततः परम् ।
विनाशितदृढध्वांतो भानुमानिव सत्वरम् ।.६७
कृतकार्य्यं वीरभद्रं दृष्ट्वा संतुष्टमानसः ।
शंभुर्वीरगणाध्यक्षं चकार परमेश्वरः ॥६८

दक्ष आदि सभी को भस्म करके उसने तीनों लोकों को परिपूर्ण करने के लिए घोर अट्टहास किया ।६४। उस समय वीरभद्र विजयश्री से आवृत्त हुआ और उसके ऊपर पुष्पवृष्टि होने लगी तथा सभी शिवगण प्रसन्न होगए । ६५ । फिर शीतल सुगन्धित, सुख की देने वाली मन्द वायु चल पड़ी, देवताओं के द्वारा दुंदुभी बजने लगीं । ६६ । कृतकार्य होकर वीरभद्र कैलाश पर्वत के लिए लौटा और सूर्य के समान सम्पूर्ण अन्धकार उसने नष्ट कर दिया । ६७ । वीरभद्र को कार्य में सफल हुआ देखकर परमेश्वर शिव अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और उन्होंने उसे गणेश्वर बना दिया । ६८ ।

रुद्र-संहिता-पार्वतीखण्ड

।। शिव-पार्वती सम्वाद ।।

किमुक्तं गिरिराजाय त्वया योगिंस्तपस्विना ।
तदुत्तरं श्रृणु विभो मत्तो ज्ञानविशारद ।।१
पार्वत्यास्तद्वचः श्रुत्वा महोतिकरणे रतः ।
सुविहस्य प्रसन्नात्मा महेशो वाक्यमब्रवीत् ।।२
तपसा परमेणैब प्रकृति नाशयाम्यहम् ।
प्रकृत्या रहितः शम्भुरहं तिष्ठामि तत्त्वतः ।।३
तस्माच्च प्रकृतेः सद्भिर्न कार्यः संग्रहः क्वचित् ।
स्थातव्य निर्विकारैश्च लोकाचारविवर्जितैः ।।४
इत्युक्ता शम्भुना तात लौकिकव्यवहारत. ।
सुविहस्य हृदा काली जगाद मधुरं वचः ।।५
यदुक्तं भवता योगिन्वचनं शंकर प्रभो ।
सा च किं प्रकृतिर्न स्यादतीतस्तां भवान्कथम् ।।६
एतद्विचार्य वक्तव्यं तत्त्वतो हि यथातथम् ।
प्रकृत्या सर्वमेतच्च बद्धमस्ति निरंतरम् ।।७

भवानी ने शिवजी से कहा—हे योगिराज ! हे ज्ञानियों में परम पण्डित ! हे व्यापक ! तपोनिष्ठ होते हुए आपने जो मेरे पिता से कहा था उसका उत्तर आप मुझसे सुनिए । १ । ब्रह्माजी ने कहा गौरी के इस वचन को सुनकर कठोर तपश्चर्या में निमग्न परम प्रसन्न चित्त वाले महेश्वर हँस कर कहने लगे । २ । महादेवजी ने कहा—मैं अपनी उग्र तपस्या के द्वारा ही प्रकृति को नष्ट कर देता हूँ, मैं शंकर नाम धारी नित्य ही प्रकृति से रहित होकर स्थित रहा करता हूं और मेरी स्थिति तत्व से रहती हैं । ३ । इसी कारण से जो सद्वृत्ति वाले पुरुष होते हैं उनको प्रकृति का संग्रह कभी भी न करके बिना विकार के लोक के

आधार से रहित होकर ही स्थित रहना चाहिये ।४। ब्रह्माजी ने कहा—हे तात ! शिवजी ने जिस समय लोक के व्यवहार के विषय में इस प्रकार कहा तो भगवती मनमें मुस्करा कर शिवजी से परम मधुर वचन कहने लगी ।५। काली ने कहा—हे शंकर ! हे योगीवर्य ! प्रभो ! आपने इस समय जो भी कुछ कहा है क्या यह प्रकृति नहीं है ? फिर आप किस तरह प्रकृति से परे हो सकते हैं ।६। आप इसका भली भाँति विचार करके तत्व स्वरूप जो भी योग्य हो वही कहिये । यह सब तो सर्वदा प्रकृति से बंधा हुआ ही है ।७।

तस्मात्त्वया न वक्तव्यं न कार्यं किंचिदेव हि ।
वचनं रचनं सर्वं प्राकृतं विद्धि चेतसा ।८।
यच्छृणोषि यदश्नासि यत्पश्यसि करोषि यत् ।
तत्सर्वं प्रकृतेः कार्यं मिथ्यावादो निरर्थकः ।९।
प्रकृतेः परमश्चेत्त्वं किमर्थं तप्यसे तपः ।
त्वया शम्भोऽधुना ह्यस्मिन्गिरौ हिमवति प्रभो ।१०।
प्रकृत्या गिलितोऽसि त्वं न जानासि निजं हर ।
निजं जानासि चेदीश किमर्थं तप्यते तपः ।११।
वाग्वादेन च किं कार्यं मम योगिंस्त्वया सह ।
प्रत्यक्षे ह्यनुमानस्य न प्रमाणं विदुर्बुधाः ।१२।
इन्द्रियाणां गोचरत्वं यावद्भवति देहिनाम् ।
तावत्सर्वं विमंतव्यं प्राकृतं ज्ञानिभिर्धिया ।१३।
किं बहूक्तेन योगीश शृणु मद्वचनं परम् ।
सा चाहं पुरुषोऽसि त्वं सत्यं न संशयः ।१४।

अतएव यह बात तो कभी भी आ को कहना ही नहीं चाहिये कि प्रकृति से कुछ मतलब ही नहीं हैं । संसार में समस्त रचना एवं वचन आदि प्रकृति से ही हैं इसे आप अच्छी तरह जान लेवें ।८। आपका श्रवण-भोजन और दर्शन आदि जो कुछ भी होता है यह सभी कुछ इस प्रकृति का ही कार्य कलाप है, मिथ्यावाद करना निरर्थक है ।९। यदि आप अपने आपको प्रकृति से पर मानते या कहते हैं तो हे प्रभो मैं !

यह जिज्ञासा रखती हूँ कि आपको तप से क्या प्रयोजन है और इस निर्जन स्थान में रहकर तपस्या करने की क्या आवश्यकता है ? । १० । हे शम्भो ! प्रकृति से गलित हो जाने के कारण ही आप अपने स्वरूप को नहीं जानते हैं । हे ईश ! यदि आपको निज का ही ज्ञान नहीं है तो फिर तपस्या किस लिये करते हैं ? ।११। हे योगिराज ! मेरा आप के साथ विवाद करने का कोई प्रयोजन नहीं है । जब किसी वस्तु का प्रत्यक्ष हो जाता है तो वहाँ विद्वान् लोग अनुमान को प्रणाम नहीं माना करते हैं ।१२। शरीर धारण करने वालों को जब तक इन्द्रिय गोचर हुआ जाता है तब तक ज्ञानी लोगों को प्रज्ञा बल से सभी कुछ प्रकृति का कार्य जानना चाहिये ।१३। हे योगीश्वर ! यहाँ अधिक कथन की कोई आवश्यकता नहीं हैं, आप मेरे वचन सुनिये, मैं ही वह प्रकृति हूँ, यह सर्वथा सत्य है कि आप पुरुष हैं ।१४।

मदनुग्रहतस्त्वं हि सगुणो रूपवान्मतः ।
मां विना त्वं निरीहोऽसि न किंचित्कर्तुमर्हसि ।१५।
पराधीनः सदा त्वं हि नानाकर्मकरो वशी ।
निर्विकारी कथं त्वं हि न लिप्तश्च मया कथम् ।१६।
प्रकृतेः परमोऽसि त्वं यदि सत्यं वचस्तव ।
तर्हि त्वया न भेतव्यं समीपे मम शंकर ।१७।
इत्याकर्ण्य वचस्तस्याः सांख्यशास्त्रोदितंशिवः ।
वेदांतमतसंस्थो हि वाक्यमुचे शिवां प्रति ।१८।
इत्येवं त्वं यदि ब्रूषे गिरजे सांख्यधारिणि ।
प्रत्यहं कुरु मे सेवामनिषिद्धां सुभाषिणि ।१९।
यद्यहं ब्रह्म निर्लिप्यो मायया परमेश्वरः ।
वेदांतवेद्यो मायेशस्त्वं करिष्यसि किं तदा ।२०।

यह मेरी ही कृपा का फल है कि आप सगुण ब्रह्म रूपधारी हुए हैं । मेरे अभाव में आप एक निरीह हैं आप में मेरे बिना कुछ भी करने की सामर्थ्य नहीं है ।१५। आप वशी हैं किन्तु ऐसा होते हुए भी आप अनेक प्रकार के कर्म किया करते हैं । आप विकार रहित किस प्रकार

है और मुझसे किस तरह लिप्त नहीं रहते हैं ? ।१६। हे शंकर ! यदि प्रकृति से परे आप हैं और आपका प्रकृति से दूर रहने का कथन सर्वथा सत्य ही है तो फिर आपको मेरे सान्निध्य में रहने में कभी भी कोई भय नहीं होना चाहिए ।१७। ब्रह्माजी ने कहा—इस उक्त प्रकार से सांख्य शास्त्र से सम्मत भवानी की वचनावली सुनकर शिवजी वेदान्त के सिद्धांत का आश्रय लेकर कहने लगे ।१८। शंकर ने कहा-हे गिरिजे हे सुभाषिणी! तुम इस तरह सांख्या-दर्शन के सिद्धान्त केअ नुसार बोल रही हो तो तुम नित्यप्रति मेरी सेवा किया करो, मैं इसका निषेध तुम से कभी भी नहीं करता हूँ ।१९। मैं माया से लिप्त न रहने वाला ब्रह्म परमेश्वर वेदान्त दर्शन के द्वारा जानने के योग्य हूँ ।२०।

इत्येवमुक्त्वा गिरिजां वाक्यमुचे गिरिं प्रभुः ।
भक्तानुरंजनकरो भक्तानुग्रहकारकः ।२१
अत्रैव सोऽहं तपसा परेण गिरे तव प्रस्थवरेऽतिरम्ये ।
चरामि भूमौ परमार्थभावस्वरूपमानंदमयं सुलोचयन् ।२२।
तपस्तप्तुमनुज्ञा मे दातव्य पर्वताधिप ।
अनुज्ञया विना किंचित्तपः कर्तु न शक्यते ।२३।
सांख्यवेदांतमतयः शिवयोः शिवदः सदा ।
संवादः सुखकृच्चोक्तोऽभिन्नयोः सुविचारतः ।२४।
गिरिराजस्य वचनात्तनयां तस्य शंकरः ।
पार्श्वे समीपे जग्राह गौरवादपि गोपरः ।२५।
उवाचेदं वचः कालीं सखीभ्यां सह गोपतिः ।
नित्यं मां सेवतां यातु निर्भीता ह्यत्र तिष्ठतु ।२६।
एवमुक्त्वा तु तां देवी सेवायै जगृहे हरः ।
निर्विकारो महयोगी नानालीलाकरः प्रभुः ।२७।
इदमेव महद्धैर्य्यं धीराणां सुतपस्विनाम् ।
विघ्नवन्त्यपि संप्राप्य यद्विघ्नर्न विहन्यते ।२८।

ब्रह्माजी ने कहा—भगवान् शम्भु गौरी से इस प्रकार कहकर फिर गिरिराज से बोले—भगवान् सदा अपने भक्तों के ऊपर अनुग्रह किया

करते हैं और उन्हें प्रसन्न रखने वाले हैं ।२१। हे गिरिराज ! मैं तुम्हारे इस परम सुन्दर पर्वत–प्रदेश में तप करते हुये अपने स्वरूप का परमार्थ भगवना से चिन्तन करते हुये विचरण करूँगा ।२२। हे नगाधीश ! अब आपको मुझे तपश्चार्या करने की आज्ञा प्रदान कर देनी चाहिये । बिना आज्ञा के प्राप्त किए हुये किसी भी प्रकार की तपस्या नहीं की जा सकती है ।२३। सांख्य दर्शन और वेदान्त दर्शन के मत को स्वीकार करके शिवा (गौरी) और शिव (शंकर) का यह पारस्परिक सम्वाद सुखप्रद बन गया है । वस्तुत: ये दोनों भिन्नता से रहित ही हैं । २४ । भगवान् शिव वे इन्द्रियजन्य विषय सुख से परे होते हुए भी नगाधीश के वचनों का गौरव रखते हुए भवानी को अपनी सेवा में रखना स्वीकार कर लिया था । ।२५। भगवान् शंकर ने अपनी सहेलियों के साथ रहने वाली भवानी से कहा कि तुम प्रतिदिन मेरी सेवा आकर किया करो और भय रहित होकर स्थित रहो ।२६। प्रभु शिव सर्वदा विकार रहित महा योगीश्वर और विविध प्रकार की लीलाएँ करने वाले हैं उन्होंने इसी रीति से पार्वती को अपनी सेवा में ग्रहण किया है ।२७। धीरतापूर्वक तपश्चर्या करने वालों का यही महान् धैर्य है जो अनेक बिघ्न बाधाओं से विचलित नहीं हुआ करते हैं ।२८।

इन्द्र द्वारा कामदेव को शिव के पास भेजना

गतेषु तेषु देवेषु शक्रः सस्मार वै स्मरम् ।
पीडितस्तारकेनाति दैत्येन च दुरात्मना ।१।
आगतस्तत्क्षणात्कामः सवसतो रतिपियः ।
सावलेपो युतो रत्या त्रैलोक्यविजयी प्रभुः ।२।
प्रणामं च ततः कृत्वा स्थित्वा तत्पुरतः स्मरः ।
महोन्नतमनास्तात सांजलिः शक्रमब्रवीत् ।३।
किं कार्यं ते समुत्पन्नं स्मृतोऽहं केन हेतुना ।
तत्त्वं कथय देवेश तत्कर्तुं समुपागतः ।४।
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य कंदर्पस्य सुरेश्वरः ।
उवाच वचनं प्रीत्या युक्तं युक्तमिति स्तुवन् ।५।

तव साधु समारंभो यन्मे कार्य्यमुपस्थितम् ।
तत्कर्तुं मुद्यतोऽसि त्वं धन्योऽसि मकरध्वज ।६।
न केवलं मदीयं च कार्य्यमस्ति सुखावहम् ।
किं तु सर्वसुरादीनां कार्य्यनेतन्न संशयः ।७।

ब्रह्माजी ने कहा—देवगण के चले जाने के पश्चात् दुरात्मा तारक नाम वाले असुर से परम पीड़ित होकर देवराज इन्द्र ने कामदेव का स्मरण किया ।१। उसी समय अपनी शक्ति से त्रिभुवन को वश में करने वाला रति-वल्लभ कामदेव रति और सखा बसन्त के सहित अभिमान-पूर्वक उपस्थित होगया ।२। देवराज इन्द्र के सम्मुख उपस्थित होकर प्रणामपूर्वक कामदेव ने उन्नत मन से कहा ।३। हे महेन्द्र ! ऐसा कौनसा कार्य है जिसके लिए मुझे आज याद किया हैं ? आप मुझे अपनी आज्ञा देवें मैं शीघ्र ही उसका पालन करने के लिये सेवा में प्रस्तुत हूं । ४ । ब्रह्माजी ने कहा—रति-वल्लभ के इस प्रकार के वचन सुनकर इन्द्र को बहुत प्रसन्नता हुई और उसकी प्रशंसा करके उन्होंने यह कहा ।५। देव-राज ने कहा—हे मकरध्वज ! इस समय तुम्हारा यह आरम्भ अधिक उत्तम है और अब मेरे इस प्रस्तुत कार्य को पूर्ण करने के लिये जो तुम यहाँ सहर्ष उपस्थित हुए हो इसके लिये तुम परम धन्य हो ।६। यह केवल मुझे ही सुख देने वाला कार्य नहीं है अपितु यह समस्त देवगण का सुखप्रद कार्य है, इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं है ।७।

संकटे बहु यो ब्रूते स किं कार्य्यं वरिष्यति ।
तथापि च महाराज कथयामि शृणु प्रभो ।८।
पदं ते कर्षितुं यो वै तपस्तपति दारुणम् ।
पातयिष्याम्यहं तं च शत्रुं ते मित्र सर्वथा ।९।
क्षणेन भ्रंशयिष्यामि कटाक्षेण वरस्त्रियाः ।
देवर्षिदानवादींश्च नराणां गणना न मे ।१०।
वज्रं तिष्ठतु दूरे वः शस्त्राण्यन्यान्यनेकशः ।
किं ते कार्यं करिष्यन्ति मयि मित्र उपस्थिते ।११।
ब्रह्माणं वा हरिं वापि भ्रष्टं कुर्य्यां न संशयः ।

अन्येषां गणना नास्ति पातयेय हरं त्वपि ।१२।
पंचैव मृदवो बाणस्ते च पुष्पमया मम ।
चापस्त्रिधा पुष्पमयः शिजिनीभ्रमरान्विता ।१३।
बलं सुदयिता मे वै वसन्तः सचिवः स्मृतः ।
अहं पंचबलो देवा मित्रं मम सुधानिधिः ।१४।

कामदेव ने कहा—हे महाराज ! सङ्कट के समय में अधिक बातें बोलने वाला व्यक्ति कुछ भी कार्य कहीं कर सकता है, तथापि मैं जो भी कुछ निवेदन करता हूँ इसे आप सुन लीजिए ।८। क्योंकि आप मेरे परम मित्र होते हैं, अतएव यदि कोई भी आपका पद प्राप्त करनेकेलिये तपस्या करता हैं तो मैं आपके उस शत्रु का निश्चय पतन कर दूंगा ।९। चाहे कोई देवर्षि हो या दानव भी क्यों न हो उसके तपोबल को ललनाओं के कटाक्षपात से क्षण भर में नष्ट-भ्रष्ट कर दूंगा, मनुष्य की तो बात ही क्या है इसका नष्ट कर देना तो बहुत ही साधारण काम है ।१०। आपके कठोर वज्र तथा अन्य शस्त्रास्त्र अलग ही रक्खे रहें मुझ जैसे शक्तिशाली मित्र के होने पर वे मेरा कुछ भी नहीं कर सकते हैं ।११। मैं अपनी अनाद्य शक्ति के द्वारा ब्रह्मा और विष्णु को भी तप से हिला सकता हूँ—शिव जैसे योगस्थ को भी कठिन समाधि से विचलित कर सकता हूँ अन्य विचारों की तो गिनती ही क्या है ।१२। मेरे कोमल पुष्पों के ये पाँच बाण, तीन स्थानों में झुकी हुई कुसुमों की धनुही, मधुकरों की गुंजार-रूपिणी प्रत्यञ्चा और सुन्दर रमणी ही मेरा बल है तथा ऋतुराज सहायक सखा है ।१३। मैं पाँच प्रकार के उपयुक्त बलों का देवता हूँ और राकापति चन्द्र मेरा घनिष्ठ मित्र है ।१४।

सेनाधिपश्च शृङ्गारो हावभावश्च सैनिकाः ।
सर्वे मे मृदवः शक्र अहं चापि तथाविधः ।१५।
यद्येन पूर्यते कार्य्यं धीमांस्तत्तेन योजयेत् ।
मम योग्यं तु यत्कार्य्यं सर्वं तन्मे नियोजय ।१६।
इत्येवं तु वचस्तस्य श्रुत्वा शक्रः सुहर्षितः ।
उवाच प्राणमन्वाचा कामं कांतासुखावहम् ।१७।

यत्कार्य्यं मनसोद्दिष्टं मया तात मनोभव ।
कर्त्तुं तत्त्वं समर्थोऽसि नान्यस्मात्तस्य सम्भवः ।१८।
तारकाख्यो महादैत्यो ब्रह्मणो वरमद्भुतम् ।
अभूदजेयः संप्राप्य सर्वेषामपि दुःखदः ।१९।
तेन संपीड्यते लोको नष्टा धर्मा ह्यनेकशः ।
दुःखिता निर्जराः सर्वे ऋषयश्च तथाखिलाः ।२०।
देवैश्च सकलैस्तेन कृतं युद्धं यथाबलम् ।
सर्वेषां चायुधान्यत्र विफलान्यभवन्पुरा ।२१।

रसराज शृङ्गार मेरा सेनाध्यक्ष है और हाव-भाव की विविध चेष्टाऐं मेरे सैनिक हैं । हे देवराज ! ऊपर बताये हुए ये सभी मृदु स्व-रूप वाले हैं और मैं स्वयं भी मृदुल रूप वाला हूँ । १५ । मतिमान् का यही कर्तव्य होना चाहिये कि जो भी जिस कार्य के सम्पादन करने के योग्य हो उसे ही उस कार्य के पूर्ण करने में लगा देवे । मेरे करने के लायक जो भी कोई कार्य हो उसे पूर्ण करने के लिए आप मेरी नियुक्ति करें ।१६। ब्रह्माजी ने कहा—कामदेव की ऐसी वचनावली सुनकर इन्द्र को बहुत ही अधिक हर्ष हुआ और वह हर्षोद्गार वचन रूप में रमणियों को सुख देने वाले कामदेव से कहे ।१७। इन्द्र ने कामदेव से कहा—हे तात ! मैंने अपने मनमें जो सोचा है उसे एक मात्र तुम हीं पूर्ण करने में समर्थ होते हो । अन्य किसी से भी उसका होना असम्भव है । १८ । तारक नामधारी एक महान् दैत्य है, जिसने ब्रह्माजी से अद्भुत वरदान प्राप्त कर लिया है और अब अजेय हो गया है । उसे कोई भी युद्ध में जीत नहीं सका है । अब वह प्रबल बली होकर सबको दुःख देता रहता है ।१९। इस समय वह लोगों को बहुत पीड़ा दे रहा है । इसके कारण से बहुत से धर्म नष्ट होगये हैं । समस्त देवता तथा ऋषि-वृन्द इसके उत्पीडन से महा दुखी हो रहे हैं ।२०। देवगण ने अपने बल से उसके साथ बहुत युद्ध किया किन्तु उसके सामने सब आयुध विफल होगए हैं ।२१।

भग्नः पाशो जलेशस्य हरिचक्रं सुदर्शनम् ।
तत्कुण्ठितमभूत्तस्य कण्ठे क्षिप्तं च विष्णुना ।२२।

एतस्य मरणं गोक्तं प्रजेशेन दुरात्मनः ।
शंभोर्वीर्योद्भवाद्बालान्महायोगीश्वरस्य हि ।२३।
एतत्कार्य्यं त्वया साधु कर्तव्यं सुप्रयत्नतः ।
ततः स्यान्मित्रवर्य्याति देवानां नः परं सुखम् ।२४।
ममापि विहितं तस्मात्सर्वलोकसुखावहम् ।
मित्रधर्मं हृदि स्मृत्वा कर्तुं मर्हसि सांप्रवम् ।२५।
शंभुः स गिरिराजे हि तपः परममास्थितः ।
स प्रभुर्नापि कामेन स्वतन्त्रः परमेश्वरः ।२६।
तत्समीपे च देवार्थं पार्वती स्वसखीयुता ।
सेवमाना तिष्ठतीति पित्राज्ञप्ता मया श्रुतम् ।२७।
यथा तस्यां रुचिस्तस्य शिवस्य नियतात्मनः ।
जायेत नितरां मार तथा कार्यं त्वया ध्रुवम् ।२८।

वरुण देव की प्रसिद्ध पाश उसके कण्ठ में आते ही टूट गई हैं और नारायण का अभेद्य सुदर्शन चक्र उसके कण्ठ को छूकर ही कुण्ठित हो गया है ।२२। इस दुष्ट महान् दैत्य की मृत्यु प्रजापति ने महा योगिराज शिवजी के वीर्य से समुत्पन्न पुत्र के द्वारा ही निर्धारित की है ।२३। हे मित्र ! इस कठिन कार्य का सम्पादन तुमको ही करना चाहिए तभी देवताओं को सर्वाधिक सुख का लाभ हो सकता है ।२४। समस्त लोकों को आनन्द देने वाला यह कर्म है ऐसा मैंने विचार किया है अतएव तुम अब अपने मनमें मित्र-धर्म का ध्यान करके इस कार्य को करो ।२५। शंकरजी के हृदय में कोई भी कामना नहीं है और वे इस समय पर्वतों के राजा हिमालय पर घोर तपश्चर्या कर रहे हैं । भगवान् शिव परम स्वतन्त्र ईश्वर हैं ।२६। मैंने यह बात भी सुनी है कि पार्वती स्वयं उन्हें अपना पति बनाने की कामना से पिता की आज्ञा प्राप्त कर सखियों के सहित सर्वदा उनकी सन्निधि में सेवा के लिये प्रस्तुत रहा करती हैं ।२७। अतः हे रतिनाथ ! अब तुमको कोई ऐसा उपाय एवं कार्य अवश्य ही करना चाहिये जिससे शंकर भगवान् में पार्वती को पत्नी रूप से स्वीकार करने की रुचि उत्पन्न हो जावे ।२८।

इति कृत्वा कृती स्यास्त्वं सर्वं दुःखं विनंक्ष्यति ।
लोके स्थायी प्रतापस्ते भविष्यति न चान्यथा ।२९।
इत्युक्तः स कामो हि प्रफुल्लमुखपंकजः ।
प्रेम्णोवाचेति देवेशं करिष्यामि न संशय ।३०।
इत्युक्त्वा वचनं तस्मै तथेत्योमिति तद्वचः ।
अग्रहीत्तरसा कामः शिवमायाविमोहितः ।३१।
यत्र योगीश्वरः साक्षात्तप्यते परमं तपः ।
जगाम तत्र सुप्रीतः सदारः सर्वसंतकः ।३२।

ऐसा कार्य करने से तुम समस्त दुःखों का नाश कर अपने जीवन में सफल हो जाओगे और निस्सन्देह संसार में तुम्हारा प्रताप फिर स्थायी हो जायगा ।२९। ब्रह्माजी ने कहा—इतनी सुनते ही कामदेव का मुख विकसित कमल की भाँति खिल उठा और बड़े ही प्रेम के साथ कहा कि यह आपका कार्य मैं निश्चय ही करूंगा ।३०। इसके पश्चात् 'ओ३म्' अर्थात् ऐसा ही होगा—ऐसा कहकर स्वीकृति दी । उस समय शिवजी की माया से मोहयुक्त होकर ही कामदेव ने इन्द्रदेव की इस बात को स्वीकार कर लिया था ।३१। जिस हिमालय के शिखर पर साक्षात् योगिराज शंकर घोर तपस्या में लीन समाधिस्थ थे वहाँ प्रसन्नचित्त कामदेव सुन्दरी पत्नी और सखा बसन्त को साथ लेकर गया ।३२।

काम द्वारा शिवजी में मोह उत्पन्न होना

तत्र गत्वा स्मरो गर्वी शिवमायामोहितः ।
मोहकस्य मधोश्चदौ धर्मं विस्तारयन्स्थितः ।१।
वसंतस्य च यो धर्मः प्रससार स सर्वतः ।
तपःस्थाने महेशस्यौषधिप्रस्थे मुनीश्वर ।२।
वनानि च प्रफुल्लानि पादपानां महामुने ।
आसन्विशेषतस्तत्र तत्प्रभावान्मुनीश्वर ।३।
पुष्पाणि सहकाराणामशोकवनिकासु वै ।
विरेजुः सुस्मरोद्दीपकराणि सुरभीण्यपि ।४।

कैरवाणि च पुष्पाणि भ्रमराकलितानि च ।
वभूवुर्मदनावेशकरोणि च विशेषत: ।५।
सुकामोद्दीपनकरं कोकिलाकलकूजितम् ।
आसीदति सुरम्यं हि मनोहर मतिप्रियम् ।६।
भ्रमराणां तथा शब्दा विविधा अभवन्मुने ।
मनोहराश्च सर्वेषां कामोद्दीपकरा अपि ।७।

ब्रह्माजी ने कहा—शंकर की माया से मोहित होकर इस महाभिमानी मन्मथ ने मधु को साथ लेकर अपना मोहने वाला मायाजाल का प्रसार करना वहाँ पहुँच कर आरम्भ कर दिया ।१। हे मुनिवर ! जहाँ अनेक वनौशधियाँ उत्पन्न होती थी वहाँ ऋतुराज बसन्त का प्रभाव सर्वत्र फैलने लगा और उस महा महिम महेश्वर की तपोभूमि पर बसन्त की पूर्ण महिमा दिखलाई देने लगी ।२। हे मुनिश्रेष्ठ ! कामदेव के सखा बसन्त के प्रभाव से उस भूमि के समस्त वृक्ष पुष्पित हो गये और एक विशेष प्रकार की छटा दिखलाई दे रही थी । ३ । आम्र लतिकाओं में बौर निकल आये और अशोक-वाटिका विकसित हो गई तथा इनकी मोहक सुगन्धि से काम-वासना का उद्दीपन होने लगा । ४ । कैरव कुसुम मधुकरों की गूँज से शोभित हो गये और इन सभी कारणों से कामदेव का वेग बढ़ने लगा ।५। कोकिलों का कलरव काम-वासना को बढ़ाता हुआ परमप्रिय प्रतीत होने लगा ।६। हे मुनिराज ! भ्रमरों की गुंजार उस समय अनेक प्रकार से हो रही थी जिससे तापसों के हृदय में भी काम-वासना जागृत होने लगी ।७।

चंद्रस्य विशदा कांतिर्विकीर्णा हि समंतत: ।
कामिनां कामिनीनां च दूतिका इव साऽभवत् ।८।
मानिनां प्रेरणाथासीत्तत्काले कालदीपिका ।
मारुतश्च सुखः साधौ ववौ विरहिणोऽप्रिय: ।९।
एवं वसंतविस्तारो मदनावेशकारक: ।
वनौकसां तदा तत्र मुनीनां दुःसहोऽत्यभूत् ।१०।
अचेतसामपि तदा कामासक्तिर भून्मुने ।

सुचेतसां हि जीवानां सति किं वर्ण्यते कथा ।११।
एवं चकार स मधुः स्वप्रभावं सुदुःसहम् ।
सर्वेषां चैव जीवानां कामोद्दीपनकारकः ।१२।
अकालनिर्मितं तात मधोर्वीक्ष्य हरस्तदा ।
आश्चर्य्यं परमं मेने स्वलीलात्ततनुः प्रभुः ।१३।
अथ लीलाकरस्तत्रः तपः परमदुष्करम् ।
ततापं स वशीशो हि हरो दुःखहरः प्रभुः ।१४।

सर्वत्र चन्द्रमा की चारुतम चाँदनी छिटक उठी जो कि कामी और कामिनियों के लिये दूतिकाओं के समान प्रतीत हो रही थी ।८। उस वक्त काम की उद्दीपक तथा मानी और माननीयों के मान का भंजन कर विहार करने को अग्रसर होने की प्रेरणा देने वाली, विरही जनों को अति अप्रिय वायु चलने लगी ।९। वहां उस समय बसन्त ऋतु का ऐसा विस्तार सर्वत्र छा गया कि तपोनिरत मुनियों के हृदय में भी काम की उद्दीप्त वासना जाग उठी और वनवासी मुनिजनों के लिये वह दुःसह्य हो गई ।१०। हे मुनिवर ! उस समय कुछ ऐसा प्रबल प्रभाव सर्वत्र फैल गया कि चेतना वाले प्राणियों की तो बात ही क्या हैं जो जड़ अचेतन थे उनमें भी काम की आसक्ति ने घर बना लिया ।११। बसन्त ऋतु का ऐसा दुःसह्य प्रभाव सभी ओर फैल गया कि समस्त जीवों के हृदय में वहाँ पर असह्य काम का उद्दीपन होगया था ।१२। हे तात ! उस समय बिना प्राकृत काल के ऋतुराज का ऐसा चमत्कृत प्रभाव देखकर भगवान शंकर अत्यन्त आश्चर्य करने लगे क्योंकि प्रभु ने तो लीला का विस्तार करने के लिए ही शरीर धारण किया है ।१३। उस समय सबका दुःख निवारण करने वाले शिवजी परम संयत होकर लीलापूर्वक दुष्कर तपश्चर्या करने में निरत हो गए ।१४।

वसंते प्रसृते तत्र कामो रतिसमन्वितः ।
चूतं बाणं समाकृष्य स्थितस्तद्वामपार्श्वतः ।१५।
स्वप्रभावं वितस्तार मोहयन्सकलाञ्जनान् ।
रत्या युक्तं तदा कामं दृष्ट्वा को वा न मोहितः ।१६।

एवं प्रवृत्तसुरतो श्रृङ्गारोऽपि गणैः सह ।
हावभावयुतस्तत्र प्रविवेज हरांतिकम् ।१७।
मदनः प्रकटस्तत्र न्यवसच्चित्तगो बहिः ।
न दृष्टवांस्तदा शंभोश्छिद्रं येन प्रविश्यते ।१८।
यदा चाप्राप्तविवरस्तस्मिन्योगिवरे स्मरः ।
महादेवस्तदा सोऽभून्महा भयविमोहितः ।१९।
ज्वलज्ज्वालाग्निसंकाशभालनेत्रसमन्वितम् ।
ध्यानस्थं शंकरं को वा समासादयितुं क्षमः ।२०।
एतस्मिन्नंतरे तत्र सखीभ्यां संयुता शिवा ।
जगाम शिवपूजनार्थं नीत्वा पुष्पाण्यनेकशः ।२१।

इस तरह बसन्त ने अपना पूर्ण प्रभाव प्रसृत कर दिया तब कामदेव अपनी स्त्री रति को साथ लेकर आम्र की मृदुल मंजरी का बाण चढ़ा कर शिवजी के वाम-भाग में स्थित होगया ।१५। कामदेव के प्रभाव के विस्तार से सभी मोहित होगये । ऐसा कोई भी न बच सका जो रति के साथ काम को देखकर मोहित न हुआ हो ।१६। जब इस तरह रति की प्रवृत्ति हुई तो रस राज श्रृङ्गार भी अपने हाव-भाव आदि सैनिकगण को लेकर शंकरजी के निकट प्रविष्ट होगया ।१७। अपने पूर्ण प्रभाव के साथ कामदेव प्रकट तो हो गया किन्तु शिवजी के मन में कोई छिद्र न पाकर, प्रवेश न कर सका और बाहिर ही स्थित बना रहा ।१८। जब कामदेव ने योगीश्वर शिव के हृदय में काम-विकार उत्पन्न करने का कोई भी अवसर नहीं प्राप्त किया तो स्वयं महान् होते हुए भी महादेवजी से भयभीत होकर मोहित होगया ।१९। शंकर के मस्तक में रहने वाला तीसरा नेत्र परम प्रज्वलित होकर अग्नि के समान प्रकाश युक्त हो रहा था । ध्यानावस्था में समाधिस्थ भगवान् शिव कोअपने आधीन बनाने की शक्ति किसकी हो सकती है ।२०। उसी समय नित्य की भाँति भवानी अपनी सखी सहेलियों सहित बहुत से पुष्प हाथों में लेकर शिव की अर्चा करने को वहाँ आगई ।२१।

यदा शिवसमीपे तु गता सा पर्यतात्मजा ।

तदैव शंकरो ध्यानं त्यक्त्वा क्षणमवस्थितः ।२२।
तच्छिद्रं प्राप्य मदनः प्रथमः हर्षणेन तु ।
बाणेन हर्षयामास पार्श्वस्थं चन्द्रशेखरम् ।२३।
शृङ्गारैश्च तदा भावैः सहिता पार्वती हरम् ।
जगाम कामसाहाय्ये मुने सुरभिणा सह ।२४।
तदैवाकृष्य तच्चापं रुच्यर्थं शूलधारिणः ।
द्रुतं पुष्पशरं तस्मै स्मरोऽमुंचत्सुसंयतः ।२५।
यथा निरंतरं नित्यमागच्छति तथा शिवम् ।
तं नमस्कृत्य तत्पूजां कृत्वा तत्पुरतः स्थिता ।२६।
सा दृष्टा पार्वती तत्र प्रभुणा गिरिशेन हि ।
विवृण्वती तदांगानि स्त्रीस्वभावात्सुलज्जया ।२७।
सुसस्मृत्य वरं तस्या विधिदत्तं पुरा प्रभुः ।
शिवोऽपि वर्णयामास तदंगानि मुदा मुने ।२८।

जब पार्वती शिवजी के बिल्कुल समीप में पहुँची तो भगवान् शंकर एक क्षण के लिये अपनी समाधि छोड़कर जागृत होगये ।२२। कामदेव ने इतना ही छिद्र प्राप्त कर लिया और प्रसन्न होकर पास में स्थित होते हुए अमोघ वाण द्वारा शिवको आह्लादित करने लगा ।२३। हे मुनिवर ! उस समय अपने पूर्ण शृङ्गार और हाव-भावों के साथ पार्वती का आगमन ऐसा हुआ मानो वह कामदेव की सहायता के लिये मन्द-सुगन्ध से पूर्ण वायु के साथ वहाँ आई हो ।२४। उस समय कामदेव को पूरा अवसर प्राप्त हो गया और शिवजी की मनोरुचि को भवानी के निरीक्षण आदि व्यापारों में बढ़ाने के लिए उसने अपना धनुष सँभाल कर सावधानी से पुष्प वाण का प्रहार शिव पर किया ।२५। प्रतिदिन की भाँति शिव के समीप में उपस्थित होकर प्रणाम, अर्चना और वन्दना का कार्य करने के लिये उस समय पार्वती शिव के सम्मुख प्रस्तुत हो गई ।२६। शिव ने उस दिन कुछ विशेष रुचि के साथ पार्वती को जैसे ही देखा तो वह स्त्री सुलभ स्वभाव से लज्जित-सी होकर,अपने अङ्ग-प्रत्यङ्गों को सिकोड़ने लगी ।२७। उस समय विधाता के दिये हुए वरदान का स्मरण कर शिवजी

पार्वती के अङ्गों की सुन्दरता की प्रशंसा करने लगे।२८।

किं मुखं किं शशांकश्च किं नेत्रे चोत्पले च किम्।
भ्रुकुट्यौ धनुषी चैते कंदर्पस्य महात्मनः।२९।
किं गतिर्वर्ण्यते ह्यस्याः किं रूपं वर्ण्यते मुहुः।
पुष्पाणि किं च वर्ण्यते वस्त्राणि च तथा पुनः।३०।
लालित्यं चारु यत्सृष्टौ तदेवात्र विनिर्मितम्।
सर्बथा रमणीयानि सर्वांगाणि न संशयः।३१।
अहो धन्यतरा चेत्रं पार्वत्यद्भुतरूपिणी।
एतत्समा न त्रैलोक्ये नारी कोपि सुरूपिणी।३२।
सुलावण्यनिधिश्चेयमद्भुतांगानि बिभ्रति।
विमोहिनी मुनीनां च महासुखविवर्धिनी।३३।
क्षणमात्रं विचार्य्येत्थं संपूज्य गिरिजां ततः।
प्रबुद्धः स महायोगी सुविरक्तो जगाविति।३४।
किं जातं चरितं चित्रं किमहं मोहमागतः।
कामेन विकृतश्चाद्य भूत्वाऽपि प्रभुरीश्वरः।३५।
ईश्वरोऽहं यदीच्छेयं परांगस्पर्शनं खलु।
तर्हि कोऽन्योऽक्षमः क्षुद्रः किं कि नैव करिष्यति।३६।
एवं वैराग्यमासाद्य पर्य्यंकासादनं च तत्।
वारयामास सर्वात्मा परेशः किं पतेदिह।३७।

शिव के मुख से ये वचन निकल पड़े—पार्वती का यह मुख है या चन्द्रमा है—ये नेत्र हैं या पूर्ण विकसित कमल हैं—क्या ये भृकुटियां हैं अथवा मनोभव कामदेव का धनुष है।२९। इसकी गति भी अनूठी हैं, रूप भी अनुपम है और पुष्पों के आभरण तथा वस्त्रादि भी सभी अनौखे दिखाई देते हैं। यहाँ किसका वर्णन किया जावे कुछ समझ में नहीं आता है।३०। इस संसार की रचना में जितना भी जो लालित्य है वह सभी बटोर कर विधाता ने इसी एक में भर दिया हैं। यह पूर्णतया निस्सन्देह हे कि इस पार्वती के समस्त अङ्ग प्रत्यङ्ग सब प्रकार से सुन्दर एवं मन को हरण करने वाले है।३१। यह महान् अद्भुत एवं रमणीय रूप पाकर

पार्वती परम धन्य है । इसकी समता रखने वाली एवं सुन्दरी अन्य कोई भी स्त्री लोक में नहीं हो सकती हैं ।३२। पार्वती लावण्य की खान है और अनुपम सुन्दर अङ्गों को धारण करती हुई मननशील मुनियों के भी मन को मोहित करने वाली तथा अनिर्वचनीय सुख देने वाली हैं ।३३। शिवजी क्षण मात्र में ही भवानी के सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुए कुछ विचार कर रहे थे कि उन योगीश्वर शम्भु को चेतनता आ गई और तुरन्त ही विरक्ति भावना में मग्न होकर कहने लगे ।३४। यह क्या विचित्र घटना हुई ? मुझे ऐसा महामोह किस प्रकार और क्यों हुआ ? समर्थ और ईश्वर होते हुए भी मुझे कामदेव ने विकार युक्त किस तरह कर दिया ? ।३५। मैं इतना समर्थ होते हुए भी किसी के अस्पृश्य अङ्ग का स्पर्श करने की लालसा रक्खू ँ तो फिर साधारण सामर्थ्य विहीनक्षुद्र पुरुष संसार में क्या-क्या नहीं करेंगे ? ।३६। इस तरह पूर्ण परिपक्व वैराग्य में निमग्न होकर शिव ने अपने मन से पार्वती के पर्यङ्कप्राप्ति का सुखाशा को एक दम हटा दिया । सर्वान्तर्यामी परमेश का क्या कभी भी पतन होना सम्भव हो सकता हैं ? ।३७।

शिव द्वारा कामदेव का भस्म किया जाना

धैर्यस्य व्यसनं दृष्ट्वा महायोगी महेश्वर: ।
विचिचिंत मनस्येवे विस्मितोऽति ततः परम् ।१।
किमु विध्नाः समुत्पन्नाः कुर्वतस्तप उत्तमम् ।
केन मे विकृत चित्त कृतमत्र कुकर्मिणा ।२।
कुवर्णनं मया प्रीत्या परस्त्र्युपरि व कृतम् ।
जातो धर्मविरोधोऽत्र श्रुतिसीमा विलंघिता ।३।
विचिंत्येत्थं महायोगी परमेशः सतां गतिः ।
दिशो विलोकयामास परितः शकितस्तदा ।४।
वाम भागे स्थितं कामं ददर्शाकृष्टबाणकम् ।
स्वशरं क्षेप्तुकामं हि गर्वितं मूढचेतसम् ।५।
तं दृष्ट्वा तादृशं गिरिशस्य परात्मनः ।
सजातः क्रोधसंमर्दस्तत्क्षादपि नारद ।६।

कामः स्थितोऽन्तरिक्षोसः घृत्वा तत्सशरं धनुः ।
चिक्षेपास्त्रं दुर्निवारममोघं शंकरे मुने ।७।

महान् योगीश्वर महादेवजी ने अपने धैर्य में विघ्न होता देखकर विस्मय पूर्वक गहन विचार किया और इस घटना पर बहुत अधिक आश्चर्य किया ।१। शिवजी मनमें कहने लगे मुझे घोर तपश्चर्या करते हुए इस प्रकार के विघ्न क्यों उपस्थित हुए और किस दुरात्मा ने मेरे नितान्तशांत चित्त में ऐसा विकार उत्पन्न कर दिया ? ।२। मैंने अनुराग विभोर होकर अन्य स्त्री के रूप-लावण्य का बखान किया—यह धर्म के सर्वथा विरुद्ध ही हुआ । मुझसे आज शास्त्र की मर्यादा का प्रत्यक्षतः उल्लंघन हुआ हैं ।३। ब्रह्माजी ने कहा-सत्यपुरुषों का उद्धार करने वाले महायोगीश्वर परमेश ने ऐसा सोचते हुए अङ्कित होकर समस्त दिशाओं का अवलोकन किया ।४। उस समय शिवजी ने देखा कि उनके वाम भाग में कामदेव बाण छोड़ने की इच्छा रखकर खड़ा हुआ है और उससे अपनी विजय का लाभ पाने पर वह महामूढ़ बहुत गर्वित हो रहा है ।५। इस दूषित भावना से उपस्थित मदन को देखकर भगवान् गिरीश को महान् क्रोध उत्पन्न होगया ।६। हे मुनिवर ! उसी समय कामदेव भय-भीत होकर अपना धनुष-बाण वही छोड़ अन्तरिक्ष में स्थित होगया । उसने ऐसा समझ रक्खा था कि मैंने अपना दुर्निवार्य अमोघ बाण शङ्करजी पर चला दिया है ।७।

बभूवामोघमस्त्रं तु मोघ तत्परमात्मनि ।
समशाम्यत्ततस्तस्मिन्संक्रुद्धे परमेश्वर ।८।
मोघीभूते शिवे स्वेऽस्त्रे भयमापाशु मन्मथः ।९।
चकंपे च पुरः स्थित्वा दृष्ट्वा मृत्युंजय प्रभुम् ।
सस्मार त्रिदशान्सर्वाछ्क्रादीन्भयबिह्वलः ।
स स्मरो मुनिशार्दूल स्वप्रयासे निरर्थके ।१०।
कामेन सुस्मृता देवाः शक्राद्यस्ते मुनीश्वर ।
आययुः सकलास्ते हि शंभुं नत्वा च तुष्टुवुः ।११।
स्तुतिं कुर्वत्सु देवेषु क्रुद्धस्याति हरस्य हि ।
तृतीयात्तस्य नेत्राद्वै निःसंसार ततो महान् ।१२।

ललाटमध्यगात्तस्मात्स वह्निर्द्रुतसम्भवः ।
जज्वालोर्ध्वशिखो दीप्तः प्रलयाग्निसमप्रभः ।१३।
उत्पत्य गगने तूर्णं निपत्य धपणीतले ।
भ्रामं भ्रामं स्वपरितः पपात मेदिनीं परि ।१४।

वह काम का अमोघ अस्त्र परमेश में निष्फल हो गया और शिव के क्रोध उत्पन्न होने पर उसकी अमाघता नष्ट हो गई ।८। शिवजी के ऊपर चलाये हुए अस्त्र के विफल हो जाने से कामदेव को बड़ा भय हो गया और प्रभु मृत्युञ्जय को कोपाविष्ट देखकर वह काँप उठा ।९। उस भय से बहुत व्याकुल होकर कामदेव ने देवराज इन्द्र आदि देवों को याद किया क्योंकि मदन का किया हुआ सभी प्रयास व्यर्थ हो गया था ।१०। हे मुनीश्वर ! मन्मथ ने जब देवों का स्मरण किया तो समस्त देवताओं ने वहाँ आकर शिव को प्रणाम किया और वन्दना करने लगे ।११। जब ये समस्त देवगण शिवजी का स्तवन कर रहे थे, उसी क्षण अत्यन्त क्रुद्ध महेश्वर के तृतीय नेत्र से, जो कि विशद ललाट के मध्य में था, अग्नि का पुञ्ज प्रकट होकर प्रलयकालीन अग्नि के समान ऊर्ध्व शिखा वाला प्रदीप्त होकर जल उठा ।१२-१३। तुरन्त ही उस प्रदीप्त अग्नि के तेज को आकाश, भूमि और अपने चारों तरफ दौड़ते हुए देखकर कामदेव पृथ्वी पर गिर पड़ा ।१४।

भस्मासात्कृतयवान्साधो मदनं तावदेव हि ।
यावच्च नरुतां वाचः क्षम्यतां क्षम्यतामितिः ।१५।
हते तस्मिन्स्मरे वोरे देवा दुःखमुपागताः ।
रुरुदुर्विह्वलाश्चातिक्रोशंतः किमभूदिति ।१६।
क्षणमात्रं रतिस्तत्र विसंज्ञा साऽभवत्तदा ।
भर्तृमृत्युजदुःखेन पतिता सा मृता इव ।१७।
जातायां चैव संज्ञायां रतिरत्यतविह्वला ।
विललाप यदा तत्रोच्चरंती विविधं वचः ।१८।
किं करोमि क्व गच्छामि किं कृतं दैवतैरिह ।
मत्स्वामिनं समाहूय नाशयामासुरुद्धतम् ।१९।

वहाँ प्रस्तुत देवताओं का समुदाय जब तक यही प्रार्थना कर रहे थे कि "अपराधी को क्षमा कर दीजिए" तब तक तो उस आग ने कामदेव को जला कर भस्मभूत कर ही दिया ।१५। उस समय उस परम वीर मदनदेव के नाश हो जाने से देवगण को अत्यन्त दुःख हुआ और वे सब दुःखाकुल होकर रुदन करते हुए कहने लगे—यह क्या हो गया ? ।१६। थोड़े-से समय के लिए कामदेव की स्त्री रति बेहोश होकर अपने स्वामी की मृत्यु की असह्य वेदना से गिर कर मूर्च्छित दिशा में मृतक के समान हो गई थी ।१७। कुछ समय के पश्चात् होश में आकर रति पति-वियोग के दुःख से बेचैन होकर करुणा विलाप करती हुई विविध भाँति के वचन बोलने लगी ।१८। रति ने रोते हुए कहा—मैं क्या करूँ और कहाँ जाकर किसका आश्रय लूँ ? यह देवगण ने क्या कर दिया ? मेरे पति को अपने स्वार्थ-सिद्ध करने के लिये यहाँ भेजकर मेरा सर्वनाश ही कर दिया ।१६।

॥ पार्वती को नारदजी का उपदेश ॥

विधे तात महाप्राज्ञ विष्णु शिष्य त्रिलोककृत् ।
अद्भुतेयं कथा प्रोक्ता शंकरस्य महात्मनः ।१।
भस्मीभूते स्मरे शंभुतृतीयनयनाग्निना ।
तस्मिन्प्रविष्टे जलधौ वद त्वं किमभूत्ततः ।२।
किं चकार ततो देवी पार्वती कुधरात्मजा ।
गता कुत्र सखीभ्यां सा तद्वदाद्य दयानिधे ।३।
श्रृणु ताता महाप्राज्ञ चरितं शशिमौलिनः ।
महोतिकारकस्यैव स्वामिनी मम चादरात् ।४।
यदाऽदहच्छंभनेत्रोद्भवो हि मदनं शुचिः ।
महाशब्दोऽद्भुतोऽभूद्वै येनाकाशः प्रपूरितः ।५।
तेन शब्देन महता कामं दग्धं समीक्ष्य च ।
सखीभ्यां सह भीता सा ययौ स्वगृहमाकुला ।६।
तेन शब्देन हिमवान्परिवारसमन्वितः ।
विस्मतोऽभूदति क्लिष्टः सुतां स्मृत्वा गतां ततः ।७।

नारदजी ने कहा—हे तात ब्रह्माजी ! महामनीषी ! हे विष्णु भगवान् के शिष्य ! त्रैलोक्य की रचना करने वाले भगवान् शिव की परम अद्भुत यह कथा आपने मुझे सुनाई है।१। शिवजी के तृतीय नेत्र की प्रदीप्त अग्नि की ज्वाला से जब कामदेव भस्म होगया और वह अग्नि समुद्र में प्रवेश करगई इसके पश्चात् क्या हुआ ?।२। पर्वतराज की पुत्री पार्वती उस समय सखियों के साथ कहाँ चली गई और उसने फिर क्या किया ? हे दयासागर ! यह और मुझे बताइए।३। ब्रह्माजी बोले—हे महान भाग्य वाले तात ! अब मेरे स्वामी, अद्भुत चरित्र करने वाले शिव जी का चरित्र मैं तुमको सुनाता हूँ, उसे तुम आदरपूर्वक सुनो।४। जब शिव के नेत्र से समुत्पन्न अग्नि के द्वारा कामदेव भस्म हुआ था उस वक्त एक ऐसा भयकर शब्द हुआ था कि समस्त गगन-मण्डल उससे गूँज उठा था।५। इस महाध्वनि से कामदेव को ताप-दग्ध सोचकर पार्वती बहुत व्याकुल हो गई और सखियों के साथ अपने स्थान में चली गई।६। उस भयानक शब्द को सुनकर नगराज हिमालय को बड़ा विस्मय हुआ और तपोनिरता अपनी पुत्री पार्वती का स्मरण करते हुए वहाँ सपरिवार पहुँच गये।७।

जगाम शोकं शैलेश सुता दृष्ट्वातिविह्वलाम् ।
रुदंतीं शंभुविरहादाससादाचलेश्वरः ।८।
आसाद्य पारिणा तस्या मार्जयन्नयनद्वयम् ।
मा विभीहि विधेऽरोदीरित्युक्त्वा तां तदाग्रहीत् ।९।
क्रोडे कृत्वा सुतां शीघ्रं हिमवानललेश्वरः ।
स्वामालयमथानिन्ये सांत्वयन्नतिविह्वलाम् ।१०।
अन्तर्हिते स्मरं दग्ध्वा हरे तद्विरहाच्छिवा ।
विकलाऽभूद्भृशंसा नौ लेभे शर्म न कुत्रचित् ।११।
पितृगृंह तदा गत्वा मिलित्वा मातरं शिवा ।
पुनर्जातं तदा मेने स्वात्मानं सा धरात्मजा ।१२।
ततस्त्वं पूजितस्तेन भूधरेण महात्मना ।
कुशलं पृष्टवांस्तं वै तदाविष्टो वरासने ।१३।

ततः प्रोवाच शैलेशः कन्याचरितमादिता ।
हरसेवान्वितं कामदहनं च हरेण ह ।१४।

हिमालय को अपनी आत्मजा पार्वती को शोक से व्याकुल देखकर बहुत अधिक कष्ट हुआ ।८। शैलराज शिव के विरह की वेदना से व्याकुल पार्वती के पास पहुँचे और पार्वती के नेत्रों से अपने हाथों के द्वारा आँसुओं को पोंछकर कहने लगे—'हे शिवे ! तुम डरो मत, रुदन बन्द कर दो', ऐसा कहकर उन्होंने पार्वती को ग्रहण करते हुए ढाढ़स बँधाया ।९। नगाधिराज ने इस तरह पार्वती को समझाते हुए अपनी गोद में बिठाया और फिर अपने भवन में शिवा ले गये ।१०। कामदेव को भस्मीभूत करने के पश्चात् शिव अन्तर्धान हो गए और भवानी उनके वियोग के दुःख से अधिक व्याकुल हो गईं, उन्हें किसी भी स्थान में शान्ति नहीं मिल सकी ।११-१२। ब्रह्माजी ने कहा—हे नारद ! उस समय इन्द्र ने मतिमान हिमालय के स्थान पर तुमको नियुक्त किया और विचरण करते हुए तुम वहाँ पहुँच गये थे ।१३। वहाँ शैलराज ने तुम्हारी अर्चना कर तुम्हें श्रेष्ठासन पर बिठलाया और तुमने उससे क्षेम कुशल का प्रश्न किया । हिमालय ने पुत्री पार्वती की सेवा एवं तपस्या और शिव के द्वारा काम-दहन का सारा चरित्र आपको सुनाया ।१४।

श्रुत्वावोचो मुने त्वं तु तं शैलशं शिवं भज ।
तमामंत्र्योदतिष्टस्त्वं संस्मृत्य मनसा शिवम् ।१५।
तं समुत्सृज्य रहसि कालीं तामगमस्त्वरा ।
लोकोपकारको ज्ञानी त्वं मुने शिववल्लभः ।१६।
आसाद्य कालीं संबोध्य तद्धिते स्थित आदरात् ।
अवोचस्त्वं वचस्तथ्यं सर्वेषां ज्ञानिनां वरः ।१७।
शृणु कालि वचो मे हि सत्यं वच्मि दयारतः ।
सर्वथा ते हितकरं निर्विकारं सुकामदम् ।१८।
सेवितश्च महादेवस्त्वयेह तपसा बिना ।
गर्ववत्या यदध्वंसीद्दीनानुग्रहकारकः ।१९।

विरक्तश्च स स्वामी महायोगी महेश्वरः ।
विसृष्टवान्स्मरं दग्ध्वा त्वांशिवे भक्तवत्सलः ।२०।
तस्मात्त्वं सुतपोयुक्ता चिरमाराधयेश्वरम् ।
तपसां संस्कृतां रुद्रः स द्वितीयां करिष्यति ।२१।

हे मुनिराज ! यह सुन कर तुमने शैलेश को उपदेश दिया था कि तुम अब शिव की आराधना करो और इतना कहकर शङ्कर के परम प्रिय एवं ज्ञाननिधि तुम एकान्त में बैठी हुई पार्वती के पास पहुँच कर कहने लगे । ।१५-१६। भवानी के समीप जाकर बड़े आदर के साथ सम्बोधन करके उसके हित के लिए ज्ञानियो में श्रेष्ठ एवं परोपकारी आपने अति उत्तम वचन कहे थे ।१८। नारदजी ने कहा—हे काली ! मुझे आप पर इस समय बड़ी दया आरही है, इसलिए मैं तुम से तुम्हारे हित करने वाले जो भी कुछ वचन कहता हूँ उन्हें तुम दत्तचित्त होकर सुनो । ये मेरे वचन तुम्हारे परम हितकारी और बिकार रहित कामना के प्रदान करने वाले हैं ।१९। तुमने महेश्वर की सेवा तो की किन्तु वह तपस्या से रहित थी और तुमको उस सेवा का बहुत गर्व भी होगया था । इसीलिये दीन हितकारी शिव ने अनुग्रह करके ही तुम्हारा वह गर्व नष्ट किया है ।२०। हे शिवा ! तुम्हारे स्वामी महेश्वर महान् योगी और परम विरक्त हैं । वे भक्तवत्सल हैं और इसीलिए उन्होंने दुरात्मा कामदेव को भस्म करके भी तुमको छोड़ दिया था । अतएव अब तुम कुछ अधिक समय तक तपस्या करके महेश्वर प्रभु की आराधना करो । तपश्चर्या से सुसंस्कृत हो जाने वाली तुमको भगवान् शङ्कर अवश्य ही स्वीकार कर लेंगे ।२१।

त्वं चापि शंकरं शम्भ न त्यक्ष्यसि कदाचन ।
नान्यं पतिं हठाद्देवि ग्रहीष्यसि शिवादृते ।२२।
इत्याकर्ण्य वचस्ते हि मुने सा भूधरात्मजा ।
किंचिदुच्छ्वसिता काली प्राह त्वां सांजलिर्मुदा ।२३।
त्वं तु सर्वज्ञ जगतामुपकारकर प्रभो ।
रुद्रस्याराधनार्थाय मंत्रं देहि मुने हि मे ।२४।

न सिद्धयति क्रिया कापि सर्वेषां सद्गुरुं विना ।
मया श्रुता पुरा सत्यं श्रुतिरेषा सनातनी ।२५।
इति श्रुत्वा वचस्तस्याः पार्वत्या मुनिसत्तमः ।
पंचाक्षरं शम्भुमंत्रं विधिपूर्वं मुपादिशः ।२६।
अवोचश्च वचस्तां त्वं श्रद्धामुत्पादयन्मुने ।
प्रभावं मन्त्रराजस्य तस्य सर्वाधिकं मुने ।२७।
शृणु देवि मनोरस्य प्रभावं परमाद्भुतम् ।
यस्य श्रवणमात्रेण शंकरः सुप्रसीदति ।२८।

हे देवी ! फिर तुम कभी भी महेश्वर का त्याग नहीं कर सकोगी और केवल शङ्कर को ही तुम हठपूर्वक अपना पति बनाओगी अन्य किसी भी देव को नहीं ।२२-२३। ब्रह्माजी ने कहा—शैल-तनया इस प्रकार के नारदजी के वचन सुनकर एक ऊँची श्वास भरकर करबद्ध होकर नारदजी से (तुमसे) बोली ।२४। पार्वती ने कहा—हे देवर्षि ! आप तो संसार में समस्त प्राणियों का उपकार एवं हित करने वाले हैं । अब आप भगवान् रुद्र की सेवाराधना करने के लिए अपना गुरु-मन्त्र प्रदान कीजिए ।२५। संसार में अच्छे गुरु की प्राप्ति के अभाव में कभीभी कोई क्रिया सिद्ध नहीं होती हैं—ऐसा मैंने सुन रक्खा है और यही सनातन श्रुति भी है । ब्रह्मा जी ने कहा—हे मुनिवर ! आपने ऐसे पार्वती के विनयपूर्ण वचन सुनकर उसको सविधि शिव के "नमः शिवाय" इस पञ्चाक्षरी मन्त्र का उपदेश दिया था ।।२६-२७। हे मुनिश्रेष्ठ ! परम श्रद्धा की भावना को उपजाते हुए आपने इस मन्त्रराज का अतुल प्रभाव सर्वश्रेष्ठ प्रतिपादन करते हुए कहा—हे देवि ! पञ्चाक्षरी मन्त्र-राज का बड़ा ही अद्भुत प्रभाव होता है । इसके केवल श्रवण करने से ही महेश्वर प्रभु प्रसन्न हो जाते हैं ।२८।

मन्त्रोऽयं सर्वमन्त्राणामधिराजश्य कामदः ।
भुक्तिमुक्तिप्रदोऽत्यंतं शंकरस्य महाप्रियः ।२९।
सुभगे येन जप्तेन विधिना सोऽचिराद् द्रुतम् ।
आराधितस्ते प्रत्यक्षो भविष्यति शिवो ध्रुवम् ।३०।

चिंतयंती च तद्रूपं नियमस्था शराक्षरम् ।
जप मंत्रं शिवे त्वं हि संतुष्यति शिवो द्रुतम् ।३१।
एवं कुरु तपः साध्वि तपःसाध्यो महेश्वरः ।
तपस्येव फलं सर्वैः प्राप्यते नान्यथा क्वचित् ।३२।

मैं तुम्हें इसका प्रभाव बतलाता हूँ । उसे तुम सुनो । यह सभी मंत्रों का राजा है । हार्दिक कामना तथा भुक्ति और मुक्ति के प्रदान करने की इसमें सामर्थ्य है और यह मन्त्र शंकर भगवान् को अत्यन्त प्रिय है ।२९। हे सुभगे ! जिस समय भक्ति के साथ तुम इस मन्त्र का जाप करोगी तो तुम्हारी आराधना से वे बहुत ही शीघ्र निस्सन्देह प्रत्यक्ष हो जाँयगे ।३०। हे शिवे ! नियमपूर्वक शिव स्वरूप का मन में ध्यान करती हुई इस मन्त्र के जप से निश्चय ही शिव शीघ्र ही तुम पर प्रसन्न हो जाँयेगे । हे साध्वि ! महेश तपस्या से ही प्राप्त हो सकते हैं और लोक में सब तप से ही अभीष्ट फल की प्राप्ति किया करते हैं । तप का प्रभाव ध्रुव सत्य है इसमें कुछ भी अन्यथा नहीं है ।३१-३२।

॥ शिव के निमित्त पार्वती का तप करना ॥

त्वयि देवमुने याते पार्वती हृष्टमानसा ।
तपःसाध्यं हरं मेने तपोर्थं मन आदधे ।१।
ततः सख्यौ समादाय जयां च विजयां तथा ।
मातरं पितरं चैव सखीभ्यां पर्यपृच्छत ।२।
प्रथमं पितरं गत्वा हिमवंतं नगेश्वरम् ।
पर्यपृच्छत्सुप्रणम्य विनयेन समन्विता ।३।
हिमवञ्छ्रूयतां पुत्रीवचनं कथ्यतेऽधुना ।
सा स्वयं चैव देहस्य रूपस्यापि तथा पुनः ।४।
भवतो हि कुलस्यास्या साफल्यं कर्तुमिच्छति ।
तपसा साधनीयोऽसौ नान्यथा दृश्यतां व्रजेत् ।५।
तस्माच्च पर्वतश्रेष्ठ देयाऽऽज्ञा भवताऽधुना ।
तपः करोतु गिरिजा वनं गत्वेति सादरम् ।६।

इत्येवं च तदा पृष्ठः सखीभ्यां मुनिसत्तम ।
पार्वत्या सुविचार्याथ गिरिराजाऽब्रवीदिदम् ।७।

ब्रह्माजी ने कहा—हे मुनिराज ! वहाँ से आपने गमन करने के पश्चात् पार्वती परम प्रसन्न हुई और मन में 'महेश्वर तप के द्वारा ही प्राप्त हो सकते हैं' ऐसा दृढ़ निश्चय कर भवानी ने तपस्या में ही मन लगा दिया ।१। फिर अपनी जया-विजया नाम वाली दो सहेलियों के साथ पार्वती ने अपने माता-पिता तथा अन्य सखी जनों से जाकर पूछा ।२। सर्व प्रथम अपने पिता हिमालय से प्रणामपूर्वक विनय और भक्ति के साथ पूछा ।३। पार्वती की दोनों सहेलियों ने हिमालय से प्रार्थना की 'हे राजन् ! आपकी पुत्री पार्वती अपने देह और रूप को सफल करने के लिये आप से कुछ निवेदन करना चाहती है, आप कृपाकर उसे सुनें ।४। यह आपकी आत्मजा आपके कुल को सफल करने की इच्छा करती है । इसे अब निश्चय होगया है कि भगवान् शङ्कर तप से ही साध्य हो सकते हैं, अन्य कोई भी उपाय उनके प्रत्यक्ष करने का नहीं है ।५। अतएव हे शैलाधीश ! आपको अब कृपा कर इसे आज्ञा प्रदान कर देनी चाहिए कि यह पार्वती वन में जाकर शिव की प्रसन्नता के लिए तपस्या करे" ।६। ब्रह्माजी ने कहा—जब पार्वती की सखियों ने ऐसा हिमालय से पूछा तो शैलराज कुछ विचार कर कहने लगे ।७।

मह्यं च रोचतेऽयर्थं मेनायै रुच्यतां पुनः ।
यथेदं भवितव्यं च किमतः परमुत्तमम् ।८।
साफल्यं तु मदीयस्य कुलस्य च न संशयः ।
मात्रे तु रुच्यते चेद्वै ततः शुभतरं नु किमु ।९।
इत्येवं वचनं पित्रा प्रोक्तं श्रुत्वा तु ते तदा ।
जग्मतुर्मातरं सख्यौ तदाज्ञप्ते तथा सह ।१०।
गत्वा तु मातरं तस्याः पार्वत्यास्ते च नारद ।
सुप्रणम्य करौ बद्ध्वोचतुर्वचनमादरात् ।११।
मातस्त्वं वचनं पुत्र्याः शृणु देवि नमोऽस्तु ते ।
सुप्रसन्नतया तद्वै श्रुत्वा कर्तुमिहार्हसि ।१२।

तप्तुकामा तु ते पुत्री शिवार्थं परमं तपः ।
प्राप्तानुज्ञा पितुश्चैव तुभ्यं च परिपृच्छति ।१३।
इयं स्वरूपसाफल्यं कर्तुं कामा पतिव्रते ।
त्वदाज्ञा यदि जायेत तप्यते च तथा तपः ।१४।

शैलराज ने कहा—मुझे पार्वती का ऐसा निश्चय बहुत पसन्द आया है किन्तु इस प्रकार तप करने की आज्ञा पार्वती की माता से लेनी चाहिए। यदि ऐसा हो जावे तो इस से श्रेष्ठतम अन्य क्या बात हो सकती है ।९। ब्रह्माजी ने कहा—शैलराज के ऐसे वचन सुनकर वे दोनों सखी पार्वती की माता से पार्वती की तपस्या के हेतु अनुमति प्राप्त करने के लिए वहाँ गई ।१०। हे नारद ! वे दोनों भवानी की माता के समक्ष प्रणाम पूर्वक सादर करबद्ध हो प्रार्थना करने लगीं।११। सखियों ने कहा—हे माता ! आपकी पुत्री आपसे कुछ निवेदन करना चाहती है और हम प्रणाम करती हैं। आप प्रसन्नतापूर्वक इसकी प्रार्थना को स्वीकार करने के योग्य हैं ।१२। आपकी पुत्री अपने अभीष्ट देव शङ्कर को प्राप्त करने के लिए वन में जाकर तप करना चाहती है। इसने अपने पिताजी से तो आज्ञा प्राप्त करली है। अब आपसे अनुमति लेने के लिए यहाँ उपस्थित हुई है ।१३। हे पतिव्रते ! आपकी पार्वती अपने रूप को सफल बनाना चाहती है। यदि आपकी आज्ञा प्राप्त हो जावे तो वह वन में जाकर कठोर तपोव्रत धारण कर लेगी ।१४।

इत्युक्त्वा च ततः सख्यौ तूष्णीमास्तां मुनीश्वर ।
नांगोचकार मेना सा तद्वाक्यं खिन्नमानसा ।१५।
ततः सा पार्वती प्राह स्वमेवाथ मातरम् ।
करौ बद्ध्वा विनीतात्मा स्मृत्वा शिवपदांबुजम् ।१६।
मातस्तप्तुं गमिष्यामि प्रातः प्राप्तुं महेश्वरम् ।
अनुजानीहि मां गंतुं तपसेऽद्य तवोवनम् ।१७।
इत्याकर्ण्य वचः पुत्र्या मेना दुखमुपागता ।
सोपाहूय तदा पुत्रीमुवाच विकला सती ।१८।

दुःखितासि शिवे पुत्रि तपस्तप्तुं पुरा यदि ।
तपश्चर गृहेऽक्त त्वं न बहिर्गच्छ पार्वती ।१९।
कुत्र यासि तपः कर्तुं देवाः संति गृहे मम ।
तीर्थानि च समस्तानि क्षेत्राणि विविधानि च ।२०।
कर्तव्यो न हठः पुत्रि गंतव्यं न बहि क्वचित् ।
साधितं किं त्वया पूर्वं पुनः किं साधियिष्यसि ।२१।

हे मुनीश्वर ! यह कर वे सखियाँ चुप होगईं और पार्वती की माता मेना ने व्याकुलतावश उसको स्वीकार नहीं किया ।१५। उस समय भवानी ने मन में शिव का ध्यान रखकर स्वयं ही विनयपूर्वक हाथ जोड़ कर माता से प्रार्थना की ।१६। पार्वती ने कहा —हे माता ! मैं महेश की प्राप्ति के लिए कल प्रातःकाल में ही तपस्या करने के लिए तपोवन में प्रस्थान करूँगी, अतः आप प्रसन्नापूर्वक आज्ञा प्रदान करें ।१७। ब्रह्मा जी ने कहा—प्रिय पुत्री के इस वचन के सुनने से मेना को अत्यन्त दुःख हुआ और परम विकल होकर बेटी को अपने पास बिठाकर कहने लगी ।१८। मेना ने कहा—हे पुत्री शिवे ! यदि तुझे दुःख है और तेरी शिव के निमित्त तपस्या करने की ही प्रबल इच्छा है तो तू यहाँ अपने घर में ही स्थित रहकर तपश्चर्या कर, बाहिर कहीं भी मत जा ।१९। तू वन में घर छोड़कर कहाँ जायगी ? मेरे इस घर में सभी देवता, तीर्थ और अनेक उत्तम क्षेत्र विद्यमान रहते हैं ।२०। हे पुत्रों ! इस विषय में विशेष हठ करना उचित नहीं है । तप के लिए बाहर मत जाओ । इसके पूर्व तुमने क्या साधना कर ली है और क्या करना चाहती हो ? ।२१।

शरीरं कोमलं वत्से तपस्तु कठिनं महत् ।
एतस्मात्तु त्वया कार्य्यं तपोऽत्र न बहिर्व्रज ।२२।
स्त्रीणां तपोवनगतिर्न श्रुता कामनार्थिनी ।
तस्मात्त्वं पुत्रि मा कार्षीस्तपोऽर्थं गमनं प्रति ।२३।
इत्येवं बहुधा पुत्री तन्मात्रा विनिवारिता ।
संवेदे न सुखं किंचिद्विनाराध्य महेश्वरम् ।२४।

तपोनिषिद्धा तपसे वनं गंतुं च मेनया ।
हेतुना तेन सोमेति नाम प्राप शिवा तदा ।२५।
अथ तां दुःखितां ज्ञात्वा मेना शैलप्रिया शिवाम् ।
निदेशं सा ददौ तस्याः पार्वत्यास्तपसे मुने ।२६।
मातुराज्ञां च संप्राप्य सुव्रता मुनिसत्तम ।
ततः स्वांते सुखं लेभे पार्वती स्मृतशंकरा ।२७।
मातरं पितरं साथ प्रणिपत्य मुदा शिवा ।
सखीभ्यां च शिवं स्मृत्वा तपस्तप्तु समुद्गता ।२८।

हे बेटी ! तेरा शरीर कुसुम से भी अधिक कोमल हैं और तपस्या का कार्य बहुत कठिन है । इसलिये तू यहीं अपनी साधना पूरी कर, कहीं बाहिर मत जाओ ।२२। हे मनोकामना रखने वाली पार्वती ! तपोवन में स्त्रियों की गति नहीं सुनी गई है, अतएव तपस्या करने के लिये वनगमन नहीं करना चाहिए ।२३। ब्रह्माजी ने कहा—मेना ने अनेक प्रकार से पुत्री को तपोवन जाने के लिये निवारण किया किन्तु भवानी ने शंकर की आराधना के अतिरिक्त किसी भी तरह सुख नहीं समझा ।२४। मेना ने अनेक बार तपस्या करने के लिये वन में जाने का निषेध किया इसी कारण से भवानी का नाम 'उमा' पड़ गया ।२५। हे मुनीश्वर ! शैलराज की पुत्री शिवा को अत्यन्त दुःखित जानकर मेना ने उसे तपश्चर्या करने के लिए आज्ञा प्रदान करदी ।२६। हे मुनीवर ! उस समय माता की आज्ञा प्राप्त कर सुव्रत वाली भवानी ने शंकरजी का स्मरण करके हृदय में बहुत सुख का लाभ किया ।२७। गौरी अपने माता-पिता को प्रणाम करके शिवजी के चरणों का स्मरण करते हुये अपनी दो सहेलियों को साथ में लेकर वन में तपस्या करने के लिये चली गई ।२८।

हित्वा मतान्यनेकानि वस्त्राणि विविधानि च ।
वल्कलानि धृतान्याशु मौञ्जीं वद्ध्वा तु शोभनाम् ।२९।
हित्वा हारं तथा चर्म मृगस्य परमं घृतम् ।
जगाम तपसे तत्र गंगावतरणं प्रति ।३०।

शम्भुना कुर्वता ध्यानं यत्र दग्धो मनोभवः ।
गंगावतरणो नाम प्रस्थो हिमवतः स च ।३१।
हरशून्योऽथ ददृशे स प्रस्थो हिमभूभृतः ।
काल्या तत्रेत्य भोस्तात पार्वत्या जगदम्बया ।३२।
यत्र स्थित्वा पुरा शंभुस्तप्तावन्दुस्तरं तपः ।
तत्र क्षणं तु सा स्थित्वा बभूव विरहार्दिता ।३३।
हा हरेति शिवा तत्र रुदन्ती सा गिरेः सुता ।
विललापातिदुःखार्ता चिंताशोकसमन्विता ।३४।
ततश्चिरेण सा मोहं धैर्य्यात्संस्तभ्य पार्वती ।
नियमायाभवत्तत्र दीक्षिता हिमवत्सुता ।३५।

विविध भाँति के मत तथा अनेक प्रकार वस्त्रादि का त्यागकर भवानी ने कटि में सुन्दर मौञ्जी बाँधली और बल्कल के वस्त्र लज्जा निवारणार्थ धारण कर लिये ।२९। कण्ठहार के स्थान में मृग चर्म धारण कर लिया और गङ्गोत्तरी के निकट तप करने को चल दी ।३०। जिस स्थान पर भगवान् शंकर ने अपनी समाधि लगाई थी और जहाँ पर मन्मथ को भस्म किया था वहीं गङ्गा के अवतरण होने का एक हिमाचल का प्रस्थ है ।३१। हे तात ! सबसे पहिले पार्वती उसी स्थल पर पहुँची किन्तु उस जगदम्बा के वहाँ पहुँचने के समय पर वह स्थान शिवजी से रहित पड़ा था ।३२। सर्वप्रथम शिवजी ने उस स्थान पर परम उत्कट तपस्या की थी । वहाँ एक क्षण के लिए पार्वती स्थित रही और फिर शिव के विरह में बहुत अधिक व्याकुल होगई ।३३। अत्यन्त वियोग के दुःख में बेचैन होती हुई भवानी गहन शोकमग्न होकर 'हाँ शंकर यह कहकर रुदन करने लगी ।३४। बहुत समय के पश्चात् रुद्राणी ने धैर्य धारण कर विरह के मोह को स्तम्भित किया और दीक्षित विधान से तपश्चर्या के लिये नियम धारण किये ।३५।

तपश्चकार सा तत्र शृंगितीर्थे महोत्तमे ।
गोरीशिखरनामासीत्तत्तापः करणाद्धि तत् ।३६।
सुन्दराश्चद्रुमास्तत्र पवित्राः शिवया मुने ।

आरोपिताः परीक्षार्थं तपसः फलभागिनः ।३७।
भूमिशुद्धिं ततः कृत्वा वेदीं निर्माय सुन्दरी ।
तथा तप समारब्धं मुनीनामपि दुष्करम् ।३८।
विगृह्य मनसा सर्वाणीन्द्रियाणि सहाशु सा ।
समुपस्थानिके तत्र चकार परमं तपः ।३९।
ग्रीष्मे च परितो वह्निं प्रज्वलंतं दिवानिशम् ।
कृत्वा तस्थौ च तन्मध्ये सततं जपती मनुम् ।४०।
सतत चैव वर्षासु स्थंडिले सुस्थिरासना ।
शिलापृष्ठे च संसिक्ता बभूव जलधारया ।४१।
शीते जलांतरे शश्वत्तस्थौ सा भक्तितत्परा ।
अनाहाराऽतपत्तत्र नीहारेषु निशासु च ।४२।

इसके अनन्तर उस सर्वोत्तम श्रृंगि तीर्थ में पार्वती तप करने लगी। इसी से उस स्थान में तपस्या करने से उसका नाम तभी से गौरी शिखर पड़ गया है ।३६। हे मुने ! पार्वती ने अपने किए जाने वाले तप का फल किस तरह ज्ञात होगा—यह जानने के लिये वहाँ परीक्षार्थ बहुत से वृक्ष लगाये थे वे सब भवानी के यहाँ पदार्पण करते ही एकदम हरे-भरे हो गये ।३७। गौरी ने पहिले भूमि की शुद्धि की और फिर उस स्थान में वेदी की रचना की। इसके अनन्तर ऐसी घोर तपस्या का आरम्भ किया जो कि महामुनियों को भी दुष्कर थी ।३८। मन के साथ समस्त इन्द्रियों का निरोध करके ध्यानावस्थित होकर कठोर तपस्या करने लगी ।३९। ग्रीष्म की ऋतु में अहर्निश अपने चारों ओर अग्नि जलाकर स्वयं मध्य में बैठकर पार्वती ने मन्त्र का जप किया ।४०। वर्षा काल में खुले मैदान में आसन जमा कर एक शिला पर बैठते हुए अपने ऊपर अविरल वर्षा की धारा लेकर जाप किया ।४१। शीत काल को कठिन रात्रियों में शिव-भक्ति में निरत होकर बिना आहार किए जल के मध्य में स्थित होकर ध्यान तथा मन्त्र-जाप भवानी ने किया ।४२।

एवं तपः प्रकुर्वाणा पंचाक्षरजपे रता ।
दध्यौ शिवं शिवा तत्र सर्वकामफलप्रदम् ।४३।

स्वारोपिताङ्कुमान्वृक्षान्सखीभिः सिंचती मुदा ।
प्रत्यहं सावकाशे सा तत्रातिथ्यमकल्पयत् ।४४।
वातश्चैव तथा शीतवृष्टिश्च विविधा तथा ।
दुःसहोऽपि तथा धर्मस्तया सेहे सुचित्तया ।४५।
दुखं च विविधं तत्र गणितं न तया गतम् ।
केवलं मन आधाय शिवे सीसीत्स्थिता मुने ।४६।
प्रथमं फलभोगेन द्वितीयं पर्णभोजनैः ।
तपः प्रकुर्वंती देवी क्रमान्निन्येऽमिताः समाः ।४७।
ततः पर्णान्यपि शिवा निरस्य हिमवत्सुता ।
निराहाराऽभवद्देवी तपश्चरणसंरता ।४८।
आहारे त्यक्तपर्णाऽभूद्यस्माद्धिमवतः सुता ।
तेन देवैरपर्णेति कथितः नामतः शिवा ।४९।

इस तरह समस्त कर्मों के फल प्रदाता शंकर जी के ध्यान में निमग्न होकर पार्वती ने घोर तपस्या में पंचाक्षरी मन्त्र का जाप किया ।४३। वहाँ अपने समारोपित वृक्षावली का सिञ्चन स्वयं अवकाश पाकर पार्वती करती थी तथा अपनी सहेलियों से उन्हें सिञ्चित कराती थी और सर्वदा समागत अतिथियों का सत्कार करती रहती थी ।४४। शीत-वात-वर्षा और ग्रीष्म के विविध प्रकार के सन्तापों को सावधान चित्त से सहन करने लगी ।४५। इस तपश्चर्या के काल में भवानी को विघ्न स्वरूप अनेक दुःख उपस्थित हुये किन्तु उसने किसी की परवाह न की । हे मुनिवर ! पार्वती का ध्येय तो एक शिवाराधना थी, उसने उसी में पूर्ण रूप से मन लगाया था ।४६। प्रथम वर्ष में फलों का भोजन और दूसरे वर्ष में पत्तों का आहार करते हुए तपस्या में देवी को इसी क्रम से बहुत-से वर्ष व्यतीत हो गये ।४७। इसके अनन्तर भवानी ने पर्णाहार का भी त्याग कर दिया था । उसी समय देवगण ने शिवा का नाम 'अपर्णा' रख दिया ।४८-४९।

एकपादस्थिता सासीच्छिवं संस्मृत्य पार्वती ।
पंचाक्षरं जंपती च मनुं तेपे तपो महत् ।५०।

चीरवल्कलसंवीता जटासंघातधारिणी ।
शिवचिंतनसंसक्ता जिगाय तपसा मुनीम् ।५१।
एवं तस्यास्तपस्यन्त्याश्चितयंत्ता महेश्वरम् ।
त्रीणि वर्षसहस्राणि जग्मुः काल्यास्तपोवने ।५२।
षष्टिवर्षसहस्राणि यत्र तेपे तपो हरः ।
तत्र क्षणमथोषित्वा चिंतयामास सा शिवा ।५३।
नियमस्थां महादेव किं मां जानासि नाधुना ।
येनाहं सुचिरं तेन नानुयाता तपोरता ।५४।
लोके वेदे च शिरिशो मुनिभिर्गीयते सदा ।
शंकरा स हि सर्वत्रः सर्वात्मा सर्वदर्शनः ।५५।
सर्वभूतिप्रदो देवः सर्वभावानुभावनः ।
भक्ताभीष्टप्रदो नित्यं सर्वक्लेशनिवारणः ।५६।

कुछ समय बाद गौरी ने एक चरण से खड़े होकर पंचाक्षरी मन्त्र के जाप द्वारा महातपश्चर्या का आरम्भ कर दिया। पार्वती की ऐसी घोर तपस्या थी कि उसने चीर बल्कलधारी जटाजूट से युक्त शिवजी का ही चिन्तन करते हुए अपने तप द्वारा उसने महातापस मुनियों को भी जीत लिया था ।५०। इसी भाँति तप करते हुए और महेश्वर का ध्यान करते हुये भवानी को उस तपोवन में तीन सहस्र वर्ष व्यतीत हो गये ।५१। जिस स्थान पर शिव ने साठ हजार वर्ष पर्यन्य तपस्या की थी वहाँ एकक्षण के लिये स्थित होकर पार्वती अपने मन में विचार करने लगी क्या मेरे उपास्य महेश्वर यह नहीं जान पाये हैं कि मेरे पाने के लिये ही यह तपोनिरता हो रही है जिससे कि इतने लम्बे समय में भी तपस्या करने वाली मेरी सुधि नहीं ले सके ।५२-५४। लोक में और वेद में तथा मुनि समाज में यह प्रख्यात है कि महेश सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी और सर्वदर्शी हैं एवं वे सब प्रकार के प्रदाता, समस्त भावों से अनुभावित और सर्वदा अपने भक्तों की मनोकामनाओं को पूर्ण करने वाले तथा सभी क्लेशों के निवारक हैं ।५५-५६।

सर्वकामान् परित्यज्य यदि चाहं वृषध्वजे ।

अनुरक्ता तदा सोऽत्र संप्रसीदतु शंकरः ।५७।
यदि नारदतंत्रत्रोक्तमंत्रो तप्तः शराक्षरः ।
सुभवत्या विधिना नित्यं संप्रीसीदतु शंकरः ।५८।
यदि भक्त्या शिवस्याहं निर्विकारा यथोदितम् ।
सर्वेश्वरस्य चात्यंतं संप्रसीदतु शंकरः ।५९।
एवं चिंतयती नित्यं तेपे सा सुचिरं तपः ।
अधोमुखी निर्विकारा जटावल्कलधारिणी ।६०।
तथा तया तपंस्तप्तं मुनीनामपि दुष्करम् ।
स्मृत्वा च पुरुषास्तत्र परमं विस्मयं गताः ।६१।
तत्तपोदर्शनार्थं हि समाजग्मुश्च तेऽखिलाः ।
धन्यान्निजान्मन्यमाना जगदुश्चेति सम्मताः ।६२।
महतां वृद्धिधर्मेषु गमनं श्रेय उच्यते ।
प्रमाणं तपसो नास्ति मान्यो धर्मः सदा बुधैः ।६३।

यदि वास्तव में मैंने समस्त अन्य कामनाओं का त्याग कर केवल शिव में ही अनुराग किया है तो वे महेश्वर मुझ अनुरागिणी पर अवश्य कृपा करेंगे ।५७। यदि नारदीय तन्त्रोक्त पंचाक्षरी मन्त्र को विधि एवं भक्ति के साथ मैंने प्रतिदिन जपा है तो गिरीश प्रभु मुझ पर प्रसन्न हों ।५८। यदि पूर्ण भक्ति की भावना से विकार रहित शिव की समुचित समाराधना की हैं तो वे सब के स्वामी प्रभु शंकर मुझ पर प्रसन्न होंगे ।५९। इस तरह महाचिन्ता में डूबी हुई वह रुद्राणी जटा धारण किए हुए निर्विकार होकर नीचे की ओर मुख करके महातपस्या करने लगी ।६०। पार्वती ने ऐसा कठोर तप किया कि मुनिगण भी उसे नही कर सकते थे, उन्हें यह देखकर बड़ा आश्चर्य ही रहा था ।६१। अनेक ऋषि-मुनि तो पार्वती की कठोर तपस्या को सुनकर वहाँ देखने के लिए आये और अपने को परम धन्य समझ कर भवानी की प्रशंसा करते हुए अत्यधिक विस्मित हुए ।६२। जो धर्मवृद्ध होते हैं उनके समीप गमन करना महान्‌पुरुषों को परमकल्याणकारी होता है । तप का कोई प्रमाण नहीं होता अतः अतएव पंडितों को सर्वदा धर्म को मान्यता देनी चाहिए ।६३।

श्रुत्वा दृष्ट्वा तपोऽस्यास्तु किमन्यैः क्रियतेतपः।
अस्मात्तपोऽधिकं लोके न भूतं न भविष्यति ।।६४
जल्पत इति ते सर्वे सुप्रशस्य शिवातपः।
जग्मुः स्वं धाम मुदिताः कठिनांगश्च ये ह्यपि ।।६५
अन्यच्छृणु महर्षे त्वं प्रभावं तपसोऽधुना ।
पार्वत्या जगदंबायाः पराश्चर्यकरं महत् ।।६६
तदाश्रमगता ये च स्वभावेन विरोधिनः।
तेऽप्यासंस्तत्प्रभावेण विरोधरहितास्तदा ।।६७
सिंहा गावश्च सततं रागादिदोषसंयुताः।
तन्महिम्ना च ते तत्र नाबाधत परस्परम् ।।६८
अथान्ये च मुनिश्रेष्ठ मार्जारा मूषकादयः।
निसर्गाद्वैरिणो यत्र विक्रियते स्म न कचित् ।।६९
वृक्षाश्च सफलास्तत्र तृणानि विविधानि च ।
पुष्पाणि च विचित्राणि तत्रासन्मुनिसत्तम ।।७०
तद्वनं च तदा सर्वं कैलासेनोपमान्वितम्।
जातं च तपसः तस्याः सिद्धिरूपभूत्तादा ।।७१

पार्वती की तपश्चर्या देख व सुनकर दूसरों के तप को हेय बताते हुए मुनिजन कहने लगे—तप तो ऐसा ही होना चाहिए जैसा यह श्री शिव के लिए किया जा रहा है। इससे विशेष बढ़कर लोक में अब तक न किसी ने किया और न भविष्य में भी हो सकेगा। ६४। इस प्रकार वे सब पार्वती के तप की प्रशंसा कहते-सुनते अपने-अपने स्थानों को चले गये यद्यपि वे कठिन अङ्ग वाले थे। ६५। हे महर्षे ! अब तुम जगदम्बा के परम अद्भुत चरित्र का तथा उनकी इस तपस्या का प्रबल प्रभाव का सुनो। परस्पर में स्वभाव के विरोधी भी कोई उस आश्रम में पहुँचते ही अपने स्वभाविक विरोध का त्याग कर देते थे। यह पार्वती के तप और स्वभाव का ही प्रभाव है। ६६–६७। सिंह और गौ परस्पर में रागादि दोष वाले हैं, किन्तु उस तपोवन में शिवा की महिमा से किसी ने किसी को कभी कोई बाधा नहीं पहुँचाई। ६८। मूषक और मार्जार आदि अन्य

भी स्वाभाविक शत्रुओं ने अपनी स्वभाव सिद्ध शत्रुता का वहाँ त्याग कर दिया था ।.६६।। वहाँ के वृक्ष-लता आदि सब पुष्पित और फलित हो गये । हे मुनिवर्य ! उस समय बड़े-बड़े विचित्र पुष्प विकसित हो गए और समस्त तपोवन कैलास के समान बन गया था । यह सभी कुछ पार्वती के कठोर तप का ही प्रभाव था । इस तरह वह देवी सिद्ध रूप हो गई थी ।।७०-७१।।

।। देवताओं का तप से व्याकुल हो ब्रह्मलोक जाना ।।

एवं तपस्यां पार्वत्यां शिवप्राप्तौ मुनीश्वर ।
चिरकालो व्यतीयाय प्रादुर्भूतो हरो न हि ।।१
हिमालयस्तदागत्य पार्वतीं कृतनिश्चयाम् ।
सभार्यः ससुतामात्य उवाच परमेश्वरीम् ।।२
मा खिद्यतां महाभागे तपसाऽनेन पार्वति ।
रुद्रो न दृश्यते बाले विरक्तो नात्र संशयः ।।३
त्वं तन्वी सुकुमारांगी तपसा च विमोहिता ।
भविष्यसि न संदेहः सत्यं सत्यं वदामि ते ।।४
तस्मादुत्तिष्ट चैहि त्वं स्वगृहं वरवर्णिनि ।
किं तेन तव रुद्रेण येन दग्धः पुरा स्मरः ।।५
अतो हि निर्विकारत्वात्त्वामादातुं वरां हरः ।
नागमिष्यति देवेशि तं कथं प्रार्थयिष्यसि ।।६
गगनस्थो यथा चन्द्रो गृहीतुं नहि शक्यते ।
तथैव दुर्गमं शंभुं जानीहि त्वमिहानघे ।।७

ब्रह्माजी ने कहा—हे नारद ! इस तरह तपस्या करते हुए पार्वती को जब बहुत समय हो गया और शिव दर्शन की उत्कट लालसा करते हुए भी शिव के दर्शन की प्राप्ति नहीं हुई । तब दृढ़ निश्चय वाली पार्वती के पास हिमालय स्त्री, पुत्र और मन्त्रियों के साथ उपस्थित हुए और भवानी से कहने लगे ।।१-२।। हे महाभागे ! हे पार्वती ! इस तपस्या से तू खिन्न मत होना । हे बाले ! तुझको रुद्र दर्शन नहीं दे रहे हैं सो वे परम विरक्त हैं इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है ।।३।। तू परम

सुकुमार अंग-प्रत्यंगों वाली है अतः तपस्या मोहित हो गई है इसमें सन्देह नहीं है। मैं तुम से जो कुछ भी कहता हूँ यह पूर्ण सत्य है ॥४॥ हे वरवर्णिनी ! इसलिये अब तुम तप को छोड़कर उठ जाओ और अपने घर को चलो। ऐसे रुद्रदेव से तुम्हारा क्या मनोरथ पूरा होगा जिसने पहिले ही रतिनाथ कामदेव को भस्म कर दिया है ॥५॥ शिवजी तो विकार से रहित हैं अतः वे तुम को ग्रहण करने के लिए कभी नहीं आवेंगे। हे देवी ! तुम उनके पाने की क्यों प्रार्थना कर रही हो ? ॥६॥ जिस तरह गगन-मण्डल में चन्द्र को कोई भी प्राप्त नहीं कर सकता है, हे पाप-रहिते ? उसी भाँति तुम शिव की प्राप्ति भी परम दुर्लभ एवं दुर्गम समझ लो ॥७॥

तथैव मेनया चोक्ता तथा सह्याद्रिणा सती ।
मेरुणा मंदरेणैव मैनाकेन तथैव सा ॥८
एमत्रमन्यैः क्षितिध्रैश्च क्रौंचादिभिरनातुरा ।
तथैव गिरिजा प्रोक्ता नानावादविधायिभिः ॥९
एवं प्रोक्ता यदा तन्वी सा सर्वैस्तपसि स्थिता ।
उवाच प्रहसंत्येव हिमवंतं शुचिस्मिता ॥१०
पुरा प्रोक्तं मया तात मातः किं विस्मृतं त्वया ।
अधुनापि प्रतिज्ञां च शृणुध्वं मम बांधवाः ॥११
विरक्तोऽसौ महादेवो येन दग्धो रुषा स्मरः ।
तं तोषयामि तपसा शंकरं भक्तवत्सलम् ॥१२
सर्वे भवंतो गच्छंतु स्वं स्वं धाम प्रदर्षिताः ।
भविष्यत्येव तुष्टोऽसौ नात्र कार्या विचारणा ॥१३
दग्धो हि मदनो येन येन दग्धं गिरेर्वनम् ।
तमानयिष्ये चात्रैव तपसा केवलेन हि ॥१४

ब्रह्माजी ने कहा—सती मेना ने भी पार्वती को बहुत कुछ समझाया तथा सह्य, मेरु, मन्दर और मैनाक पर्वतों ने भी समझाया एवं अन्य क्रौञ्च गिरियों ने भी अनेक हेतु बनाकर भली-भाँति आतुरता रहित भवानी को समझाया था ॥८-९॥ इस प्रकार से जब सभी ने तपस्या

में निरता पार्वती को समझाने का प्रयास किया तो मुस्कराती हुई पवित्र हास्य वाली देवी पिता हिमवान् से कहने लगी। १०। पार्वती ने कहा—हे तात ! हे माता ! मैंने पहिले ही आप लोगों से कह दिया था, क्या आपने अब उसे भुला दिया है ? अच्छा, इस समय समस्त बन्धुगण मेरी प्रतिज्ञा को सुन लेवें। यह सुनिश्चित है कि महेश्वर परम विरक्त हैं और उन्होंने क्रोध से कामदेव को भी भस्म कर दिया है। अब उन्हीं भक्तों पर कृपा दृष्टि करने वाले शिव को मैं अपनी इस उग्र तपश्चर्या से सन्तुष्ट एवं प्रसन्न अवश्य ही करूँगी। ११–१२। आप लोग प्रसन्नता पूर्वक इस समय अपने-अपने स्थानों को चले जावें। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है कि शंकर भगवान् मुझ पर प्रसन्न होंगे। १३। जिन प्रभु ने कामदेव को जलाकर भस्म कर दिया और गिरि के वन को दग्ध कर दिया, मैं अब उन्हें अपने तपोबल के प्रभाव से यहाँ पर ही बुला लूँगी। १४।

तपोबलेन महता सुसेव्यो हि सदाशिवः।
जानीध्वं हि महाभागाः सत्यं सत्यं वदामि वः ॥१५
आभाष्य चैवं गिरजा च मेनकां मैनाकबंधुं पितरं हिमालयम्।
तूष्णीं बभूवाशु सुभाषिणी शिवा समंदरं पर्वतराजबालिका॥
जग्मुस्तथोक्ताः शिवयाहि पर्वतायथागतेनापि विचक्षणास्ते।
प्रशसमाना गिरिजां मुहुर्मुहुः सुविस्मिता हेमनगेश्वराद्याः॥
गतेषु तेषु सर्वेषु सखीभिः परिवारिता।
तपस्तेपे तदधिकं परमार्थं सुनिश्चया ॥१८
तपसा महता तेन सप्तमासीच्चराचरम्।
त्रैलोक्यं हि मुनिश्रेष्ठ सदेवासुरमानुषम् ॥१९
तदा सुरसुराः सर्वे यक्षकिन्नरचारणाः।
सिद्धाः साध्याश्च मुनयो विद्याधरमहोरगाः ॥२०
सप्रजापतयश्चैव गुह्यकाश्चतथापरे।
कष्टात् कष्टतरं प्राप्ताः कारणं न विदुः स्म तत् ॥२१

हे महान् भाग्य वालो ! मैं आपसे परम सत्य सिद्धान्त बताती हूँ कि महाभाग शिव केवल महान् तपोबल से ही सेवित हो सकते हैं। यह आप

खूब अच्छी तरह समझ लेवें। १५। ब्रह्माजी ने कहा—शैलराज की आत्मजा गिरिजा ने अपनी माता मेनका, भाई मैनाक और पिता हिमाचल से ऐसा कह कर तथा मन्दर को भी इसी तरह समझाकर सुभाषिनी ने मौन धारण कर लिया। १६। गिरिनन्दिनी के ऐसे वचन सुनकर पर्वतराज और सुमेरु गिरि आदि बार-बार पार्वती की दृढ़ता की प्रशंसा करते हुए परम आश्चर्यान्वित होकर वापिस चले गये। १७। सब के जाने के पश्चात् भवानी अपनी सहेलियों के साथ परमार्थ के निश्चय से महान् तप में पुनः संलग्न हो गई। १८। उस समय उसके कठोर तपोव्रत से चराचर सभी सन्तप्त हो उठे। हे मुनीश्वर! त्रिभुवन में देव और असुरों में कोई ऐसा नहीं रहा, जिसे सन्ताप न हुआ हो। १९। सुर-असुर-यक्ष-किन्नर-चारण-सिद्ध, मुनि, महोरग विद्याधर प्रजापति, और गुह्यक् सब को महान् कष्ट होने लगा और इसका क्या कारण है—यह किसी को भी ज्ञात न हो सका। २०-२१।

सर्वे मिलित्वा शक्राद्या गुरुमामंत्र्य विह्वलाः।
सुमेरौ तप्तसर्वांगा विधि मां शरणं ययुः ॥२२
तत्र गत्वा प्रणम्याशु विह्वला नष्टसुत्विषः।
ऊचुः सर्वे च संस्तूय ह्यैकपद्यै न मां हि ते ॥२३
त्वया सृष्टिमिदं सर्वं सगदेतच्चराचरम्।
संतप्तमति कस्माद्वै न ज्ञातं कारण विभो ॥२४
तद्ब्रूहि कारणं ब्रह्मन् ज्ञातुमर्हसि नः प्रभो।
दग्धीभूततनून्देवान् त्वत्तो नान्योऽस्ति रक्षकः ॥२५
इत्याकर्ण्य वचस्तेषामहं स्मृत्वा शिवं हृदा।
विचार्य मनसा सर्वं गिरिजायास्तपः फलम् ॥२६
दग्धं विश्वमिति ज्ञात्वा तैः सर्वैरिह सादरात्।
हरये तत्कथयितुं क्षीराब्धिमगमं द्रुतम् ॥२७
तत्र गत्वा हरिं दृष्ट्वा विलसंतं सुखासने।
सुप्रणम्य सुसंस्तूय प्रावोचं सांजलिः सुरैः ॥२८

इन्द्र आदि समस्त देव गुरु वृहस्पति से परामर्श कर सुमेरु पर्वत पर

सर्वांग सन्तापसे अत्यन्त व्याकुल होते हुए विधाताकी शरणमें पहुँचे ।२२। वहाँ आकर सबने मुझे प्रणाम किया । मैंने देखा उनकी कान्ति एकदम क्षीण हो चुकी थी । उन्होंने मेरी स्तुति कर कहना आरम्भ किया ॥२३॥ देवगण ने कहा—हे विभो ! आपका निर्मित चराचर जगत् किस कारण से इस समय परम सन्तप्त हो रहा है ? हम लोग कोई भी इसका कारण नहीं समझ पा रहे हैं ॥२४॥ हे ब्रह्मन् ! आप ही इसका कारण एवं उपाय बतलाइए । हमारा शरीर सन्ताप से जल-सा रहा है । आप के अतिरिक्त हमारा कोई अन्य रक्षा करने वाला नहीं है ॥२५॥ ब्रह्माजी ने कहा— मैंने उनकी प्रार्थना सुनकर मन में शिव का स्मरण करके विचार किया कि यह पार्वती की उग्रतम तपस्या का ही परिणाम है ।२६। उस समय समस्त विश्व को ताप दग्ध जानकर सब लोग क्षीर सागर पर पहुँचे और भगवान् नारायण से सब बात कही ॥२७॥ वहाँ सुखासन पर स्थित नारायण की सेवा में प्रणाम पूर्वक सबने स्तुति करके निवेदन किया ॥२८॥

त्राहि त्राहि महाविष्णो तप्तान्नः शरणागतान् ।
तपसोग्रेण पार्वत्यास्तपंत्याः परमेण हि ॥२९
इत्याकर्ण्य वचस्तेषामस्मदादिदिवौकसाम् ।
शेषासने समाविष्टोऽस्मानुवाच रमेश्वरः ॥३०
ज्ञातं सर्वनिदानं मे पार्वतीतपसोऽद्य वै ।
युष्माभिः सहितस्त्वद्य व्रजामि परमेश्वरम् ॥३१
महादेवं प्रार्थयामो गिरिजाप्रापणाय तम् ।
पाणिग्रहार्थमधुना लोकानां स्वस्तयेऽमराः ॥३२
वरं दातुं शिवायै हि देवदेवः पिनाकधृक् ।
यथा चैष्यति तत्रैव करिष्यामोऽधुना हि तत् ॥३३
तस्माद्वयं गमिष्यामो यत्र रुद्रो महाप्रभुः ।
तपसोग्रेण संयुक्तोऽद्यास्ते परममंगलः ॥३४
विष्णोस्तद्वचनं श्रुत्वा सर्वं ऊचुः सुरादयः ।
महाभीता हठात् क्रुद्धाद्दग्धकामान्भयंकरात् ॥३५

हे नारायण ! हम पार्वती की कठोरतम तपश्चर्या के तेज से अति सन्तप्त होकर आपकी शरण में आये हैं। आप हमारी रक्षा कीजिए ।२६। इस प्रकार हम समस्त देवगण की प्रार्थना सुनकर भगवान् रमापति शेष-शय्या पर बैठे होकर हम से बोले ॥३०॥ गिरिनन्दिनी की उग्र तपस्या का कारण हमको ज्ञात हो गया है। अब आप सब के साथ हम महेश्वर के स्थान पर चलते हैं ॥३१॥ हे देववृन्द ! हम सभी महेश्वर से पार्वती के पाणिग्रहण की प्रार्थना करेंगे। इस पाणिग्रहण के कर लेने पर सभी लोकों का परम कल्याण होगा ॥३२॥ परमदेव महेश्वर पार्वती को वरदान देने के लिए जिस तरह भी वहाँ जावें, हम सभी उनसे यही प्रार्थना करेंगे और अब हमको वहीं चलना चाहिए, जहाँ वह महाप्रभु अपनी उग्र तपस्या से परम मंगल सम्पन्न होकर विराजमान हैं ॥३३-३४॥ ब्रह्माजी ने कहा—तब सब देवता कहने लगे—हम उन प्रलय करने वाले महादेव से अत्यन्त भयभीत हैं, क्योंकि उन्होंने भयंकर क्रोध से हठात् कामदेव को भस्म कर दिया है ॥३५॥

महाभयंकरं क्रुद्धं कालानलसमप्रभम् ।
न यास्यामो वयं सर्वे विरूपपाक्षं महाप्रभुम् ॥३६
यथा दग्धः पुरा तेन मदनो दुरतिक्रमः ।
तथैवः क्रोधयुक्तो नः स धक्ष्यति न संशयः ॥३७
तदाकर्ण्य वचस्तेषां शक्रादीनां रमेश्वरः ।
सांत्वयंस्तान्सुरान्सर्वान्प्रोवाच स हरिर्मुने ॥३८
हे सुरा मद्वचः प्रीत्या शृणुतादरतोऽखिलाः ।
न वो धक्ष्यति स स्वामी देवानां भयनाशनः ॥३९
तस्माद्भवद्भिर्गन्तव्यं मया सार्द्धं विचक्षणः ।
शंभुं शुभकरं मत्वा शरणं तस्य सुप्रभोः ॥४०
शिवं पुराणं पुरुषं ह्यधीशं वरेण्यरूपं हि परंपराम् ।
तपो जुषाणं परमात्मरूपं परात्परं तं शरणं व्रजामः ॥४१
एवमुक्तास्तदा देवा विष्णुना प्रभविष्णुना ।

जग्मुः सर्वे तेन सह द्रष्टुकामाः पिनाकिनम् ।।४२

हम उन महाक्रोधाविष्ठ कालानल के समान कान्ति वाले विरूपाक्ष से अत्यन्त डरे हुए हैं। अतः महायुक्त उनके समीप हम नहीं जायेगे। ३६। वे क्रोधमें भरे हुए हैं, जैसे परम दुस्सह कामदेव को भस्म कर दिया, वैसे ही हम सबको भी वे निस्सन्देह भस्मकर देंगे।३७। ब्रह्माजी ने कहा—भगवान विष्णु देवगण के ये वचन सुनकर सबको सांत्वना देकर कहने लगे।३८। भगवान् हरिने कहा-हे देववृन्द ! तुम सब मेरे वचन पर विश्वास करो और सुनो। वे तो सर्वदा देवोंके भयके नाश करने वाले परम रक्षक स्वामी हैं। तुमको कभी भी भस्म नहीं करेंगे।३९। अतएव तुम सब हमारे साथ वहाँ उनके समीप में चलो। शिव सदा शुभकारी हैं। इसलिए उन शुभ करने वाले की ही शरण में चलना चाहिए।४०। आप मन में यह धारणा करो कि शिव परम कल्याणकारी, सर्वाधीश्वर, परात्पर, वरेण्य स्वरूप, उग्र तपस्वी और परमात्म-रूप हैं। हम उन्हीं की शरण में जा रहे हैं।४१। ब्रह्माजी ने कहा—जब भगवान् नारायण ने इस प्रकार सबको समझा कर सान्त्वना दी तो सब देवता शंकरके दर्शनकी इच्छा लेकर वहाँ गए।४२।

प्रथमं शैलपुत्र्यास्तत्तपो द्रष्टुं तदाश्रयम् ।
जग्मुर्मार्गवशात्सर्वे विष्ण्वाद्याः सकुतूहलाः ।।४३
पार्वत्याः सुतपो दृष्ट्वा तेजसा व्यापृतास्तदा ।
प्रणेमुस्तां जगद्धात्रीं तेजोरूपां तपः स्थिताम् ।।४४
प्रशंसंतस्तपस्तस्याः साक्षात्सिद्धितनोः सुराः ।
जग्मुस्तत्र तदा ते च यत्रास्ते वृषभध्वजः ।।४५
तत्र गत्वा च ते देवास्त्वां मुने प्रैषयंस्तदा ।
पश्यंतो दूरतस्तस्थुः कामभस्मकृतो हरात् ।।४६
नारद त्वं शिवस्थानं तदा गत्वाऽभयः सदा ।
शिवभक्तो विशेषेण प्रसन्नं दृष्टवान् प्रभुम् ।।४७
पुनरागत्य यत्नेन देवानाहूय तांस्ततः ।
निनाय शंकरस्थानं तदा विष्ण्वादिकान्मुने ।।४८
अथ विष्ण्वादयः सर्वे तत्र गत्वा शिव प्रभुम् ।

दद्दृशः सुखमासीनं प्रसन्नं भक्तवत्सलम् ।।४६
योगपट्टस्थितं शंभुं गणैश्च परिवारितम् ।
तपोरूपं दधान च परमेश्वररूपिणम् ।।५०
ततो विष्णुर्मयाऽन्ये च सुरसिद्धमुनीश्वराः ।
प्रणम्य तुष्टुवुः सूक्तैर्वेदोपषदन्वितैः ।।५१

मार्ग में सब से पहिले विष्णु आदि देवों ने भगवती शैलात्मज की तपोभूमि के दर्शन किये और पार्वती के कठोर तप को देखा तथा तपस्या के तेज से व्याप्त उस जगदम्बा को प्रणाम किया । ४३-४४ । भवानी के तप की तभी देवता बड़ाई करते हुए बोले कि ऐसा प्रतीत होता है, यह साक्षात् सिद्धि का शरीर है । फिर सब भगवान् शंकरके समीप गये ।४५। हे मुनिवर ! वहाँ पहुँच कर समस्त देवों ने आपको ही पहले शिवजी के पास भेजा और मन्मथ का मथन करने वाले शंकर को देखकर दूर ही स्थित हो गये । ४६ । हे मुने ! आप उस वक्त निर्भीक होकर शिवजी के समीप गये और आपने विशेष रूप से महेश्वर को प्रसन्न देखा ।४७। फिर आपने यत्न करके देवगण को बुलाया और विष्णु आदि सभी को शंकरके सन्निकट में ले गये । ४८ । तब वहाँ विष्णु प्रभृति सब देवों ने सुखपूर्वक विराजमान और प्रसन्नमुख एवं भक्तों पर कृपा करने वाले शंकर के दर्शन किये । ४६ । उस वक्त शिवजी योगासन पर संस्थित थे और तपश्चर्या करने का रूप धारण किये हुए थे उनके चारों ओर गण घिरे हुए थे । ५० । उस समय मैं, भगवान् विष्णु, समस्त सुर-सिद्ध और मुनिगण सबने शिव को पहिले प्रणाम किया, फिर वेद तथा उपनिषदों के सूक्तों के द्वारा उनकी स्तुति की ।५१।

।।विष्णु-ब्रह्मा के आग्रह से शिवजी का सम्मत होना।।

नमो रुद्राय देवाय मदनांतकराय च ।
स्तुत्याय भूरिभासाय त्रिनेत्राय नमो नमः ।।१
शिपिविष्टाय भीमाय भीमाक्षाय नमः ।
महादेवाय प्रभवे त्रित्रिष्टपतये नमः ।।२
त्वं नाथः सर्वलोकानां पिता माता त्वमीश्वरः ।

शंभुरीशः शंकरोऽसि दयालुस्त्वं विशेषतः ।।३
त्वं धाता सर्वजगतां ज्ञातुमर्हसि नः प्रभो ।
त्वां विना कः समर्थोऽस्ति दुःखनाशे महेश्वर ।।४
इत्याकर्ण्य वचस्तेषां सुराणां नन्दिकेश्वरः ।
कृपया परया युक्तो विज्ञप्तुं शंभुमारभत् ।।५
विष्णवादयः सुरगणा मुनिसिद्धसंघास्त्वांद्रष्टुमेवसुरवर्य्यविशेषयंति ।
कार्य्यार्थिनोऽसुरवरैःपरिभत्स्र्यमानाःसम्यक्पराभवपदंपरमंप्रपन्न : ।
तस्मात्त्वया हि सर्वेश त्रातव्या मुनयः सुराः ।
दीनबन्धुर्विषेशेण त्वमुक्तो भक्तवत्सलः ।।७

देवताओं ने कहा—काम को भस्म करने वाले उज्ज्वल कान्ति से पूर्ण तीन नेत्रों को धारण करने वाले, परम स्तुति के योग्य रुद्र देव शंकर भगवान् को सब का प्रणाम स्वीकार हो ।।१।। शिपिविष्ट, भीम और भीमाक्ष के लिए प्रणाम हैं। महेश्वर इस जगत् के उत्पन्न करने वाले और स्वर्ग के स्वामी हैं, उनके लिए सब का प्रणाम स्वीकार हो ।।२।। आप सब लोकों के स्वामी, माता-पिता और ईश्वर हैं, आप शम्भु-ईश और शंकर तथा दया करने वाले हैं ।।३।। हे महेश्वर ! आप त्रिभुवन के विधाता और रक्षक हैं। अतः अब आप हमारी रक्षा करें। आपके अतिरिक्त दुःख का नाश करने को अन्य कोई समर्थ नहीं हैं ।।४।। ब्रह्माजी ने कहा—देवगण के ऐसे दीनता भरे वचन सुनकर परम कृपालु नन्दिकेश्वर महेश से विज्ञप्ति करने लगे ।।५।। नन्दिकेश्वर ने कहा—हे भगवन् शंकर ! दैत्यों की दी हुई पीडा से अत्यन्त उत्पीड़ित होकर परम व्याकुल विष्णु आदि समस्त देवगण मुनि-वृन्द और सिद्ध लोग आपके पुण्यमय दर्शन के लिए यहाँ उपस्थित हुए हैं। हे सुरवर ! ये सब असुरों से ताड़ित एवं तिरस्कृत होकर अब आपकी शरण ग्रहण करना चाहते हैं ।।६।। हे सर्वेश्वर ! हे दीनबन्धो ! अब आपको इन सबकी रक्षा करनी चाहिए। आप तो विशेष रूप से भक्तों के वत्सल कहे जाते हैं ।७।

एवं दयावता शंभुर्विज्ञप्तो नंदिना भृशम् ।
शनैःशनैरुपरमद्ध्यानादुन्मील्य चाक्षिणो ।।८

ईशोऽथोपरतः शंभुस्तदा परमकोविदः ।
समाधेः परमात्मासौ सुरान्सर्वानुवाच ह ॥९
कस्माद्यूयं समायाता मत्समीपं सुरेश्वराः ।
हरिब्रह्मादयः सर्वे ब्रूत कारणमाशु तत् ॥१०
इति श्रुत्वा वचः शंभोः सर्वे देवा मुदाऽन्विताः ।
विष्णोर्विलोकयामासुर्मुखं विज्ञप्तहेतवे ॥११
अथ विष्णुर्महाभक्तो देवानां हितकारकः ।
मदीरितमुवाचदं सुरकार्यं महत्तमम् ॥१२
तारकेण कृतं शंभो देवानां परमाद्भुतम् ।
कष्टात्कष्टतरं देवा विज्ञप्तुं सर्व आगताः ॥१३
हे शंभो तव पुत्रेणौरसेन हि भविष्यति ।
निहतेस्तारकौ दैत्यो नान्यथा मम भाषितम् ॥१४

ब्रह्माजी ने कहा—जब नन्दिकेश्वर ने दयालु शिवजी से इस तरह प्रार्थना की तो ध्यानावस्था से जगकर शंकर ने शनैः शनैः अपने नेत्र खोले ।८। इसके अनन्तर परम पण्डित शंकर ध्यान से धीरे-धीरे उपरत होकर अपनी समाधि से जाग्रत हुए और देवताओं से बोले ।९। भगवान् शंकर ने कहा—हे देववृन्द ! तुम हरि, ब्रह्मा आदि सब हमारे पास किस कारण से उपस्थित हुए हो ? आप लोग यहाँ आने का कारण स्पष्ट रूप से हमको बतलाओ ।१०। ब्रह्माजी ने कहा—भगवान् शिव के ऐसे आशा भरे वचन सुनकर समस्त देवों को अत्यन्त हर्ष हुआ और विज्ञप्ति करने के लिए विष्णु के मुख की ओर ताकने लगे ।११। सब देवगण के हितैषी विष्णु ने देवताओं के महान् कार्य के पूर्ण करने के लिये शंकर भगवान् से निवेदन करना आरम्भ किया । १२ । विष्णु ने कहा—हे शंकर ! तारकासुर से देवताओं को बहुत भारी पीड़ा उत्पन्न हो गई है । इसीलिए ये सब एकत्रित होकर आपकी सेवा में उसकी प्रार्थना करने को यहाँ आये हैं । १३ । हे भगवान् ! जिस समय आपके वीर्य से स्वपुत्र उत्पन्न होगा, उसी के द्वारा इस तारक दैत्य का संहार हो सकेगा । यह मेरा निवेदन पूर्णतया सत्य एवं ध्रुव है । १४ ।

विचार्य्येत्थं महादेव कृपां कुरु नमोऽस्तु ते ।
देवान्समुद्धर स्वामिन् कष्टात्तारकनिर्मितात् ॥१५
तस्मात्त्वया गिरिजा देव शंभो ग्रहीतव्या पाणिना दक्षिणेन ।
पाणिग्रहेणैव महानुभावां दत्तां गिरींद्रेण च तां कुरुष्व ॥१६
विष्णोस्तद्वचनं श्रुत्वा प्रसन्नो ह्यब्रवीच्छिवः ।
दर्शयन् सद्गतिं तेषां सर्वेषां योगतत्परः ॥१७
यदा मे स्वीकृता देवी गिरिजा सर्वसुन्दरी ।
तदा सर्वे सुरेन्द्राश्च ऋषयो मुनयस्तदा ॥१८
सकामाश्च भविष्यन्ति न क्षमाश्च परे पथि ।
जीवयिष्यति दुर्गा सा पाणिग्रहणतः स्मरम् ॥१९
मदनो हि मया दग्धः सर्वेषां कार्यसिद्धये ।
ब्रह्मणो वचनाद्विष्णो नात्र कार्या विचारणा ॥२०
एवं विमृश्य मनसा कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।
सुधीः सर्वैश्च देवेन्द्र हठं नो कर्तुमर्हसि ॥२१

हे महेश्वर ! मैं प्रणतिपूर्वक प्रार्थना करता हूँ कि आप इस तथ्य पर विचार कर मुझ पर कृपा कीजिये । हे स्वामिन् ! तारकासुर बड़ा भारी कष्ट दे रहा है । आप उससे सबका उद्धार कीजिये हे शंकर ! गिरिराज हिमवान् अपनी महाभागा प्रिय पुत्री गिरिजा को आपकी सेवा में पत्नी रूप में देने को इच्छुक हो रहे हैं । आप उसका दक्षिण कर से पाणिग्रहण कर उसे स्वीकार करें । १५–१६ । भगवान् विष्णु के वचन श्रवण कर शिव ने योग में परायण समस्त देवगण को व्यावहारिक सुन्दर गति का प्रदर्शन करते हुए प्रसन्नचित्त से कहा—जब परम सुन्दरी गौरी मेरे द्वारा अंगीकृत की जायगी तब सभी सुरऋषि और मुनिवृन्द सकाम हो जायेंगे और परमार्थिक मार्ग की सामर्थ्य खो बैठेंगे, क्योंकि पाणि-ग्रहण हो जाने पर वही दुर्गा भस्मीभूत कामदेव को पुनः जीवित करा देगी । १७-१९ । मैंने तो ब्रह्माजी के वचन से सब के कार्यों की सिद्धि के लिये कामदेव को भस्म किया । हे विष्णुदेव ! इस बात में कुछ भी सन्देह नहीं है ।२० । हे देवेन्द्र ! आप ही स्वयं और अकार्य की व्यवस्था

के मन में विचार करें और परम बुद्धिशील आप इन देवताओं के साथ इस विषय में कोई हठ न करें ।२१।

दग्धे कामे मया विष्णो सुरकार्यं महत् कृतम् ।
सर्वे तिष्ठंतु निष्कामा मया सह सुनिश्चितम् ।।२२
यथाऽहं च सुराः सर्वे तथा यूयमयत्नतः ।
तपः परमसंक्ताः करिष्यध्वं सुतुष्करम् ।।२३
यूयं समाधिना तेन मदनेन विना सुराः ।
परमानंदसंयुक्ता निर्विकारा भवन्तु वै ।।२४
पुरावृत्तं स्मरकृतं विस्मृत यद् विधे हरे ।
महेन्द्र मुनयो देवा यत्तत्सर्व विमृश्यताम् ।।२५
महाधनुधरेणैव मदनेन हठात्सुराः ।
सर्वेषां ध्वानविध्वंसः कृतस्तेन पुराऽमराः ।।२६
कामो हि नरकायैव तस्मान् क्रोधोऽभिजायते ।
क्रोधाद्भवति सम्मोहो मोहाच्च भ्रंशते तपः ।।२७
कामक्रोधौ परित्याज्यौ भवद्भिः सुरसत्तमैः ।
सर्वरेव च मंतव्य मद्वाक्यं नात्यथा क्वचित् ।।२८

हे विष्णो ! कामदेव को भस्म कर मैंने देवगण का एक परम महान् कार्य किया है । जिस तरह मैं इस समय हूँ वैसे ही समस्त देवता भी कामवासना से मुक्त होकर स्थित रहें । २२ । जैसे मैं तपश्चर्या में मग्न हूँ, हे देवगण ? वैसे ही आप सब भी दुष्कर तपस्या करो । २३ । हे देववृन्द ! उस काम के बिना समाधिस्य हो परम आनन्द के साथ निर्विघ्न तपोव्रत का पालन करो । २४ । हे विधाता ! हे विष्णो ! हे हेमन्द्र ! हे मुनिवृन्द ! हे देवगण ! यदि कामदेव की पुरानी सब बात भुला दी हो तो पुनः उसी पुरातन बात का संस्मरण करके भली-भाँति विचार करो । २५ । हे देववण ! उस परम शक्तिशाली पुष्पधन्वा ने महेन्द्र, मुनि और देवों की जो दशा की है आपको उसका अच्छी तरह विचार अवश्य ही कस्ना चाहिये । उसने पहिले भी सबका ध्यान कष्ट किया था । २६ । नरक का द्वार काम ही होता है, इसके कारण ही क्रोध

की उत्पत्ति हुआ करती है, क्रोध से मोह, मोह से स्मृत-भ्रम और भ्रम से बुद्धि नाश होकर तप का नाश होता है। २७। हे देवगण ! आप सब को काम तथा क्रोध का त्याग कर देना चाहिए। मेरी यह उपदेशपूर्ण बात आप लोग अवश्य मान लें इसमें पूरा तथ्य भरा हुआ है।२८।

एवं विश्राव्य भगवान् महादेवो वृषध्वजः।
सुरान् प्रवाचयामास विधिविष्णू तथा मुनीन् ॥२९
तूष्णींभूतोऽभवच्छभुध्यानिमाश्रित्य वै पुनः।
आस्ते पुरा यथा स्थाणुर्गणैश्च परिवारितः ॥३०
स्वात्मानमात्मना शंभुरात्मन्येव व्यचिंतयन्।
निरंजनं निराभासं निर्विकारं निरामयम् ॥३१
परात्परतरं नित्यं निर्ममं निरवग्रहम्।
शब्दातीतं निर्गुणं च ज्ञानगम्यं परात्हरम् ॥३२
एवंस्वरूपं परमं चिंतयन् ध्यानमास्थितः।
परमानन्दसंमग्नो बभूव बहुसूतिकृत् ॥३३
ध्यानस्थितं च सर्वेशं दृष्ट्वा सर्वे दिवौकसः।
हरिशक्रादयः सर्वे नन्दिनं प्रोचुरानताः ॥३४
किं वयं करवामाद्य विरक्तो ध्यानमास्थितः।
शंभुस्त्वं शंकरसखः सर्वज्ञः शुचिसेवकः ॥३५
केनोपायेन गिरिशः प्रसन्नः स्याद्गणाधिप।
तदुपायं समाचक्ष्व वयं त्वच्छरणं गताः ॥३६

ब्रह्माजी ने कहा—वृषध्वज महेश ने ऐसा कह कर विष्णु विधाता देववृन्द और मुनिगण से उत्तर श्रवण करने की इच्छा प्रकट की।२९। इसके पश्चात् शिव ध्यान-मग्न होकर मौन होगये। उस समय वे गणों से युक्त थे और एक स्थाणु के तुल्य अचल होगये।३०। महेश्वर भगवान् निरंजन, निराकार, निराभास, निर्विकार और निरामय आत्म-तत्व का अपनी ही आत्मा में चिन्तन करने लग गये। ३१। वे यह चिन्तन कर रहे थे कि परमात्म तत्व परात्पर, नित्य स्वरूप, निरवग्रह, ममता से रहित, निर्गुण, ज्ञान द्वारा जानने योग्य और शब्द से भी परे हैं। ३२।

इस तरह परमतत्व स्वरूप का ध्यान करते हुए समस्त जगत् के सृष्टा प्रभु शंकर परमानन्द में निमग्न हो गये। ३३। तब समस्त देवता और विष्णु ने महादेव को ध्यानावस्थित देखकर नन्दिकेश्वर से कहा—हम लोग अब क्या कर सकते हैं? शंकर भगवान् तो समाधि में लीन हो गये हैं। आप ही इन परम विरक्त शिव के सच्चे सखा और परम पवित्र सेवक हैं। ३४-३५। हे गणाधिप! जिस उपाय से शंकर प्रसन्न हों वही हमें कृपाकर बतलाइये। हम सब आपकी शरण में आये हैं ॥३६॥

इति विज्ञपितो दैवेर्मुने हर्षादिभिस्तदा।
प्रत्युवाच सुरांस्तान्स नन्दी शंभुप्रियो गणः ॥३७
हे हरे हे विधे शक्र निर्जरा मुनयस्तथा।
शृणुध्वंवचनं मे हि शिवसंतोष कारकम् ॥३८
यदि वो हठ एवाद्य शिवदारपरिग्रहे।
अतिदीनतया सर्वे सुनुतिं कुरुतादरात् ॥३९
भक्तेर्वश्यो महादेवो न साधारणतः सुराः।
अकार्यमपि सद्भक्त्या करोति परमेश्वरः ॥४०
एवं कुरुत सर्वे हि विधिविष्णुमुखाः सुराः।
यथागतेन मार्गेणान्यथा गच्छत मा चिरम् ॥४१
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य मुने विष्ण्वादयः सुराः।
तथेति मत्वा सुप्रीत्या शंकरं तुष्टुवुर्हि ते ॥४२

हे मुने! इस तरह प्रसन्नतापूर्वक देवताओं की स्तुति सुनकर शिव के परम प्रिय नन्दी ने देवताओं से कहा ॥३७॥ नन्दिकेश्वर ने कहा—हे ब्रह्मा-विष्णु प्रभृति देव-मुनियो! अब मैं आप सबको शिव को सन्तुष्ट एवं प्रसन्न करने वाली बात बतलाता हूँ, उसे सुनिये। यदि शिव के दार परिग्रह कराने में ही आप अपना कल्याण समझ कर बड़ा हठ करते हैं तो आप सब परम दैन्य-भावसे इनका स्तवन करें। ३८-३९। हे देवगण! महेश्वर सदा भक्ति द्वारा ही वशीभूत होते हैं। वह भक्ति भी उच्चकोटि की होनी चाहिए। साधारण से काम नहीं चलेगा। शिव-भक्ति द्वारा वश में होकर जो कोई अकार्य भी होगा उसे भी कर दिया करते हैं ॥४०॥

ब्रह्माजी ने कहा—विष्णु आदि समस्त देवताओं ने नन्दी को यह बात सुनकर कि अगर आप ऐसा नहीं कर सकते हैं तो कुछ भी फल नहीं होगा अत: जहां से आप आये हैं वापिस चले जाइये, सब ने कहा हम सब यही करेंगे और फिर सभी दीनतापूर्ण भक्तिभाव से शिव की स्तुति करने में परायण हो गये ।४१-४२।

देवदेव महादेव करुणासागर प्रभा ।
समुद्धर महाक्लेशात्त्राहि नः शरणागतान् ।।४३
इत्येवं बहुदोनोक्त्या तुष्टुवुः शंकरं सुराः ।
रुरुदुः सुस्वर सर्वे प्रेमव्याकुलमानसाः ।।४४
हरिर्मया सुनीतोक्त्या सुविज्ञप्तं चकार ह ।
संस्मरन्मनसा शंभु भक्त्या परमयाऽन्वितः ।।४५
सुरैरेवं स्तुतः शंभुर्हरिणा च मया भृशम् ।
भक्तवात्सल्यतो ध्यानाद्विरतोऽभून्महेश्वरः ।।४६
उवाच सुप्रसन्नात्मा हर्यादीन्हर्षयन्हरः ।
विलोक्य करुणादृष्ट्या शंकरो भक्तवत्सलः ।।४७
हे हरे हे विधे देवाः शक्राद्या युगपत्समे ।
किमर्थमागता यूयं सत्यं ब्रूत ममाग्रतः ।।४८

उन्होंने कहा—हे करुणासागर ! हे देवदेव ! हम सब इस समय महान् क्लेश में डूबे हुए, आपकी शरण में आये हैं । आप हम सबका उद्धार कीजिए । ४३ । ब्रह्माजी बोले—जब बार-बार अपनी रक्षा के लिए सबने दैन्य भाव से स्तवन किया और व्याकुल होकर रुदन करने लगे तो मैंने और हरि ने अत्यन्त भक्ति के साथ शंकर का स्मरण करते हुए दीनता से विज्ञप्ति की । ४४-४५ । ब्रह्माजी ने कहा—मेरे, विष्णु के तथा सभी देवताओं के द्वारा मन से शिव का स्मरण करने पर भक्तवत्सलतावश शिव ने समाधि से उपराम ग्रहण किया । ४६ । भक्तों पर दया करने वाले परम प्रसन्न शिव ने सबकी ओर करुणा दृष्टि से देखते हुए कहा-हे विधाता ! हे हरे ! हे इन्द्रादि देवगण ! आप अब सब मुझे सत्य बात बतलाओ कि यहां किस कारण से आये हो ? । ४७-४८ ।

सर्वज्ञस्त्वं महेशान त्वंतर्याम्यखिलेश्वरः ।
किं न जानासि जित्तस्थं तथा वच्म्यपि शासनात् ।४९
तारकासुरतो दुःखं सम्भूतं विवधं मृड ।
सर्वेषां नस्तदर्थं हि प्रसन्नोऽकारि वै सुरैः ।५०
शिवा सा जनिता शैलात्त्वदर्थं हि हिमालयात् ।
तस्यां त्वदुद्भवात्पुत्रात्तस्य मृत्युर्न चान्यथा ।५१
इति दत्तो ब्रह्मणा हि तस्मै दैत्याय यद्वरः ।
तदन्यस्मादमृत्युः स बाधते निखिलं जगत् ।५२
नारदस्य निदेशात्सा करोति कठिनं तपः ।
तत्तेजसाऽखिलं व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।५३
वरं दातुं शिवायै हि गच्छ त्वं परमेश्वर ।
देव दुःखं जहि स्वामिन्नस्माकं सुखमावह ।५४
देवानां मे महोत्साहो हृदये चास्ति शंकर ।
विवाहं तव सद्रष्टुं तत्त्वं कुरु यथोचितम् ।५५
रत्यै यद्भवता दत्तो वरस्तस्य परात्पर ।
प्राप्तोऽवसर एवाशु सफलं स्वपणं कुरु ।५६

तब भगवान् विष्णु ने कहा—हे महेश्वर ! आप सर्वज्ञ, सर्वान्तिर्यामी और अखिलेश्वर हैं । आप हमारे मन की बात खूब अच्छी तरह जानते हैं तथापि आपकी आज्ञा का पालन करते हुए मैं सेवा में निवेदन करता हूँ ।४९। हे महेश ! तारक दैत्य ने हम सबको बहुत दुःख दिया है । इसी दुःख से छुटकारा पाने के लिए आपको सब देवता प्रसन्न करने के हेतु यहाँ उपस्थित हुए हैं ।५०। जगदम्बा गौरी ने आप ही के लिए हिमाचल के यहाँ जन्म धारण किया है । इस गिरिजा के उदर से उत्पन्न पुत्र द्वारा ही तारकासुर की मृत्यु निश्चत है इसमें तनिक भी अन्यथा बात नहीं है ।५१। ब्रह्माजी ने उस दैत्य को ऐसा ही वरदान दिया है । किसी भी अन्य के द्वारा अपनी मृत्यु न देखकर वह दुरात्मा समस्त जगत् को सता रहा है ।५२। देवर्षि नारद के उपदेश से भगवती गिरिजा अत्यन्त कठोर तपस्या कर रही है और उसका तेज समस्त चराचर में

व्याप्त हो गया है ।५३। हे परमेश्वर ! अब उस तपोमग्न पार्वती को वरदान देने के लिए वहाँ पधारें । हे स्वामिन् ! अब आप देवों को दुःख को दूर कर हम सबको प्रसन्न कीजिए ।५४। हे शङ्कर ! सब देवगण और हमारे मन में आपके विवाह देखने का उत्साह भरा हुआ है सो यदि समुचित हो तो आप इसे स्वीकार करने की कृपा करें ।५५। हे परात्पर ! आपने कामदेव की स्त्री रति को जो वरदान दिया है उसका भी अब अवसर आ गया है, सो आप उसे सत्य सफल करें ।५६।

इत्युक्त्वा तं प्रणम्यैव विष्णुर्देवा महर्षयः ।
संस्तूय विविधैः स्तोत्रैः संतस्थुस्तत्पुरोऽखिलाः ।५७।
भक्ताधीनः शंकरोऽपि श्रुत्वा देववचस्तदा ।
विहस्य प्रत्युयाचाशु वेदमर्यादरक्षकः ।५८।
हे हरे हे विधे देवाः शृणुत्तादरतोऽखिलाः ।
यथोचितमहं वच्मि सविशेषं विवेकतः ।५९।
नोचित हि विधानं वै विवाहकरणं नृणाम् ।
महानिगडसंज्ञो हि विवाहो दृढबन्धनः ।६०।
कुसङ्गा बहवो लोके स्त्रीसंगस्तत्र चाधिकः ।
उद्धरेत्सकलैर्बन्धैर्न स्त्रीसङ्गात्प्रमुच्यते ।६१।
लोहदारमयैः पाशैर्दृढ बद्धोऽपि मुच्यते ।
स्त्र्यादिपाशसुसंबद्धो मुच्यते न कदाचन ।६२।
वर्द्धंते विषयाः शश्वन्महाबन्धनकारिणः ।
विषयाक्रांतमनसः स्वप्ने मोक्षोऽपि दुर्लभः ।६३।

ब्रह्माजी ने कहा—इस प्रकार विष्णु, देवगण और महर्षियों ने कह कर प्रणाम किया और सब लोग अनेक स्तोत्रों के द्वारा शिव की स्तुति कर उनके समक्ष में स्थित हो गए ।५७। भक्त पराधीन महेश्वर ने देव-गण के निवेदन को श्रवण कर वेद-मर्यादा पालन करते हुए हँसकर उसी समय कहा—।५८। हे हरे ! हे विधाता ! हे देववृन्द ! मैं जो ज्ञान की विशेषता से पूर्ण समुचित बात कहता हूँ उसे आप सब सुनिए ।५९। जहाँ तक भी बन सके मनुष्यों को भी विवाह का बन्धन उचित नहीं होता

है। क्योंकि यह वैवाहिक बन्धन ऐसा दृढ़ है जो कि महा निगड़ के समान होता है।६०। यों तो संसार में बहुत से बुरे सङ्ग हुआ करते हैं। उन सब में स्त्री का सङ्ग महा हानिकारक होता है। अन्य कुसङ्ग के बन्धनों से मुक्ति हो सकती है किन्तु स्त्री के बन्धन से कभी उद्धार नहीं हो सकता है।६१। लोहा तथा दारुमय पाशों से दृढ़तापूर्वक बद्ध पुरुष भी छुटकारा पा सकता है। परन्तु स्त्री के संग रूपी पाश से बँधा हुआ मनुष्य किसी तरह भी छुटकारा नहीं पा सकता है।६२। इस महा बन्धन में पड़े हुए पुरुषों की विषय वासना बराबर बढ़ती चली जाती है और जब विषयों की बाढ़ निरन्तर होती चली जावे तो स्वप्न में भी मोक्ष की आशा रखना दुर्लभ है।६३।

सुखमिच्छति चेत्प्राज्ञो विधिवद्विषयांस्त्यजेत्।
विषवद्विषयानाहुर्विषयैर्यैनिहन्यते।६४।
जनो विषयिणा साकं वार्तातः पतति क्षणात्।
विषयं प्राहुराचार्याः सितालिप्तिंद्रवारुणीम्।६५
यद्यप्येवं हि जानामि सर्वं तान विशेषतः।
तथाप्यहं करिष्यामि प्रार्थनां सफलां च वः।६६।
भक्ताधीनोऽहमेवास्मि तद्वशात्सर्वकार्यकृत्।
अयथोचितकार्तरं हि प्रसिद्धौ भुवनत्रये।६७।
कामरूपाधिपस्यैव पणश्च सफलः कृतः।
सुदक्षिणस्य भूपस्य भर्मबन्धगतस्य हि।६८।
गौतमक्लेशकर्ताहं त्र्यंबकात्मा सुखावहः।
तत्कष्टप्रददुष्टानां शापदायी विशेषतः।६९।
विषं पीत सुरार्थं हि भक्तवत्सलभावधृक्।
देवकष्टं हृतं यत्नात्सर्वदैव मया सुराः।७०।

यदि मतिमान् मनुष्य सच्चा सुख चाहता है तो उसे सविधि विषयों का त्याग कर देना चाहिए। ये विषय विष के तुल्य प्राणियों के मारने वाले हुआ करते हैं।६४। विषयी पुरुषों के साथ वार्तालाप करने मात्र से मनुष्य का एक क्षण में पतन हो जाता है। हे महेन्द्र! महामनीषी

आचार्यों ने विषयों को मिश्री से मिश्रित साक्षात् सुरा बतलाया है ।६५। मैं यद्यपि विषयों के बुरे प्रभाव एवं कुपरिणाम को भली भाँति जानता हूँ और मुझे विशेष रूप से सब ज्ञान भी है, तो भी मैं अब तुम्हारी इस प्रार्थना को सफल करूँगा ।६६। भक्तों के अधीन होकर उनकी प्रार्थनानुसार सभी कुछ करता हूँ । जो त्रिभुवन में बड़े शक्तिशालियों से भी असाध्य कार्य है, उस महान् तथा अनुचित कार्य को करने वाला मैं जगत् में प्रख्यात हूँ ।६७। मैंने कामरूप नामक देश के राजा की प्रतिज्ञा को पूरा किया तथा कठिन बन्धन में प्राप्त सुदक्षिण नृप का प्रण भी पूर्ण किया था । गौतम को मैंने क्लेशित किया । मैं त्रयम्बकात्मा सुख को पाने वाला होने के कारण अपने भक्तों के सताने वाले दुरात्माओं को विशेष रूप से कष्ट एवं शाप दिया करता हूँ ।६८-६९। भक्तवत्सलता के भाव के हेतु ही देवहित के लिए मैंने महाकालकूट विष का पान किया था । हे देवगण ! आप लोगों का कष्ट तो मैं सर्वदा यत्न से दूर करता रहा हूँ ।७०।

भक्तार्थमसहं कष्टं बहुशो बहुयत्नतः ।
विश्वानरमुनेर्दुःख हृत गृहपतिर्भवन् ।७१।
किं बहूक्तेन च हरे विधे सत्यं ब्रवीम्यहम् ।
मत्पणोऽस्तीति यूयं वै सर्वे जानीथ तत्त्वतः ।७२।
यदा यदा विपत्तिर्हि भक्तानां भवति क्वचित् ।
तदा तदा हराम्याशु तत्क्षणात्सर्वशः सदा ।७३
जानेऽहं तारकाद्दुःखं सर्वेषां वः समुत्थितम् ।
असुरात्तद्धशिष्यामि सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ।७४।
नास्ति यद्यपि मे कश्चिद्विहारकरणे रुचिः ।
विवाहयिष्ये गिरिजां पुत्रोत्पादनहेतवे ।७५।
गच्छत स्वगृहाण्येवं निर्भयाः सकलाः सुराः ।
कार्यं वः साधयिष्यामि नात्र कार्या विचारणा ।७६।
इत्युक्त्वा मौनमास्थाय समाधिस्थोऽभवद्धरः ।
सर्वे विष्णवादयो देवाः स्वधामानि ययुर्मुने ।७७।

भक्तजन के हितार्थ मैंने अनेक बार विविध कष्टों को सहन किया है। गृहपति होकर मैंने विश्वानर मुनि का दुःख निवारण किया था।७१। हे हरे! हे विधाता! मेरे इस कथन को आप पूर्ण सत्य एवं तत्वपूर्ण समझें। अधिक कहना व्यर्थ है।७२। मेरे भक्तों पर जिस समय भी कोई विपत्ति आ पड़ती है, मैं उसी समय तत्काल उसे सर्व प्रकार से दूर भगा देता हूँ।७३। मुझे ज्ञान है कि आप सबको तारकासुर बड़ा कष्ट दे रहा है। अब मैं सत्य कहता कि तुम्हारी उस पीड़ा का हरण मैं अवश्य ही करूँगा। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।७४। यद्यपि मुझे विषय वासना में लिप्त होकर विहार करने की किंचितमात्र भी अभिरुचि नहीं है तो भी पुत्रोत्पादन के लिए ही में गिरिजा के साथ विवाह अवश्य करूँगा।७५। हे देववृन्द! अब आप लोग भयविहीन होकर अपने स्थान को चले जाओ। मैं प्रण करता हूँ कि आपका कार्य पूर्ण करूँगा। अब इसमें कुछ भी विचार करने की आवश्यकता नहीं है।७६। इतना कह कर शिव मौन हो समाधिस्थ हो गए और विष्णु आदि सब देवता अपने-अपने स्थानों को चले गए।७७।

सप्तर्षियों का हिमाचल को विवाह के लिए सम्मत करना

वसिष्ठस्य वचः श्रुत्वा सगणोऽपि हिमालयः।
त्रिस्मितो भार्य्यया शैलानुवाच स गिरीश्वरः।१।
हे मेरो गिरिराट् सह्य गन्धमादन मन्दर।
मैनाक विन्ध्य शैलेन्द्राः सर्वे शृणुतमद्वचः।२।
वसिष्ठो हि वदत्येवं किं मे कार्यं विचार्य्यते।
यथा तथा च शंसध्वं निर्णीय मनसाऽखिलम्।३।
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य सुमेरु प्रमुखाश्च ते।
प्रोचुर्हिमालयं प्रीत्या सुनिर्णीय महीधराः।४।
अधुना किं विमर्शो कृत्तं कार्य्यं तथैव हि।
उत्पन्नेयं महाभाग देवकार्यार्थमेव हि।५।
प्रदातव्या शिवायेति शिवस्यार्थेऽवतारिणी।
अनयाऽऽराधितौ रुद्रो रुद्रेण यदि भाषिता।६।

एतच्छ्रुत्वा वचस्तेषाम्मेर्वादिदीनां हिमाचलः ।
सुप्रसन्नतरोऽभूद्वै जहास गिरिजा हृदि ।७।

ब्रह्माजी ने कहा—हिमालय ने वसिष्ठ मुनि के वचनों का श्रवण कर अपनी पत्नी और गणों के सहित अत्यधिक विस्मित होकर कहा ।१। गिरिराज हिमवान् ने कहा— हे मेरु ! हे गन्धमादन ! इसी प्रकार सह्य, गिरिराज मन्दर, मैनाक, विन्ध्य और शैलेन्द्र को सम्बोधित कर कहा—तुम सब मेरे वचन सुनो ।२। महामुनि वसिष्ठ जी इस तरह कह रहे हैं अब मेरा क्या कर्तव्य है इस बात का आप सभी भलीभाँति विचार कर वर्णन करें वही मैं करूँ ।३। ब्रह्माजी ने कहा—हिमवान् के इन वचनों को श्रवण कर मन्दर, विन्ध्यादि पर्वतों ने आपस में परामर्श करके जो निर्णय किया उसे उन्होंने प्रेम से कहा ।४। हे महाभाग ! अब कार्य तो हो ही गया है । इसका विचार करना व्यर्थ है । यह तो देवों के कार्य पूर्ण करने के लिये ही समुत्पन्न हुई है ।५। इस गिरिजा का संसार में अवतीर्ण होना शिव के लिये ही है, अतः उसे शङ्कर को ही दे देना चाहिए । पार्वती ने भी इसके लिये ही शिवाराधन किया है और रुद्रदेव के द्वारा वह अङ्गीकृत भी हो चुकी है ।६। ब्रह्माजी ने कहा—सुमेरु प्रभृति पर्वतों के इस उत्तर को सुन कर हिमवान् को परम प्रसन्नता हुई और गिरि नन्दिनी अपने मन में हँसने लगी ।७।

अरुन्धती च तां मेनां बोधयामास कारणात् ।
नानावाक्यसमूहेनेतिहासैर्विविधैरपि ८।
अथ सा मेनका शैलपत्नी बुद्ध्वा प्रसन्नधीः ।
मुनीनरुन्धतीं शैलं भोजयित्वा बुभोज च ।९।
अथ शैलवरो ज्ञानी सुसंसेव्य मुनींश्च तान् ।
उवाचः साञ्जलिः प्रीत्या प्रसन्नात्मा गतभ्रमः ।१०
सप्तर्षयो महाभागा वचः शृणुतमामकम् ।
विस्मयो मे गतः सर्वः शिवयोश्चरितं श्रुतम् ।११।
मदीयं च शरीरं वै पत्नी मेना सुतासुताः ।
ऋद्धिःसिद्धिश्च चान्यद्वै शिवस्यैव न चान्यथा ।१२।

इत्युक्त्वा स तदा पुत्रीं दृष्ट्वा तत्सादरं च ताम् ।
भूषयित्वा तदङ्गानि ऋष्युत्संगे न्यवेशयत् ।१३
उवाच च पुनः प्रीत्या शैलराज ऋषींस्तदा ।
अयं भागो मया तस्मै दातव्य इति निश्चितम् ।१४

उधर अन्तःपुर में मुनिपत्नी अरुन्धती ने अनेक प्रमाणिक वचन और इतिहास की बातें सुना कर मेना का पूर्ण प्रवोधन किया ।८। शैलराज की पत्नी ने यथार्थता को समझ कर प्रसन्नता प्राप्त की और उसने अरुन्धती और शैलराज को भोजन कराकर स्वयं भी भोजन किया ।९। परम ज्ञानी हिमवान् ने समस्त श्रेष्ठतम मुनियों की सुचारु रूप से सेवा करते हुए करबद्ध होकर प्रसन्नता से भ्रम-रहित वचन कहे—।१०। हे महान् भाग्य वाले ऋषिवृन्द ! आप सप्त ऋषियों की परम कृपा से मैंने शङ्कर और रुद्राणी का पुण्य-चरित्र सुना और अब मेरा विस्मय पूर्ण रूप से उन्मूलित होगया है ।११। इसे मैं भलीभाँति समझ गया कि यह मेरा शरीर, पत्नी मेना, पुत्री पार्वती और समस्त ऋद्धि-सिद्धियाँ जो कुछ भी है वह सभी भगवान् महेश्वर का ही है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ।१२। ब्रह्माजी ने कहा—हिमवान् ने यह कह कर अपनी पुत्री पार्वती को वस्त्राभूषणों से भली भाँति सममलंकृत कराकर आदरपूर्वक ऋषियों की गोद में बिठा दिया ।१३। फिर परम प्रहृष्ट होते हुए शैलाधिपति ने ऋषियों से कहा—अब मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया है कि यह भाग मैं शिव की सेवा में ही समर्पित कर दूँगा ।१४।

शङ्करो भिक्षुकस्तेऽय स्वयं दाता भवान् गिरे ।
भैक्ष्यश्च पार्वती देवी किमतः परमुत्तमम् ।१५
हिमवन् शिखराणान्ते यद्धेताः सदृशो गतिः ।
धन्यस्त्वं सर्वशैलानामधिपः सर्वतो वरः ।१६।
एवमुक्त्वा तु कन्यायै मुनयो बिमलाशयाः ।
आशिषं दत्तवन्तस्ते शिवाय सुखदा भव ।१७।
स्पृष्ट्वा करेण तां तत्र कल्याणं ते भविष्यति ।
शुक्लपक्षे यथा चन्द्रो वर्द्धन्तां त्वद्गुणास्तथा ।१८।

इत्युक्त्वा मुनयः सर्वे दत्त्वा ते गिरये मुदा ।
पुष्पाणि फलयुक्तानि प्रत्ययं चक्रिरे तदा ।१९।
अरुन्धती तदा तत्र मेनां सा सुमुखी मुदा ।
गुणैश्च लोभयामास शिवस्य परमा सती ।२०।
हरिद्राकुङ्कुमैः शैलश्मश्रूणि प्रत्यमार्जयत् ।
लौकिकाचारमाधाय मङ्गलायनमुत्तमम् ।२१।

ऋषी ने कहा — भगवान् शंकर ग्रहण करने वाले आप दानदाता और पार्वती भिक्षा स्वरूप हैं, इससे अधिक सर्वोत्तम कार्य क्या हो सकता है ।१५। हे हिमाचल ! आप अपने सर्वोच्च शिखर समुदाय पति के कारण परम धन्य, समस्त शैलों के स्वामी तथा श्रेष्ठ हो ।१६। यह कहते हुए पवित्रान्तःकरण वाले ऋषियों ने जगदम्बा को आशीर्वाद दिया कि हे गिरिनन्दिनी ! तुम भगवान् शिव को सुखदायक होओ ।१७। फिर ऋषि ने अपने कर कमल से उसका स्पर्श करते हुए कहा—तुम्हारा परम कल्याण होगा और शुक्ल पक्ष के चन्द्र के समान अपने गुणों की गरिमा से वृद्धि वाली होगी ।१८। यह कह कर ऋषियों ने हिमवान् को फल पुष्प प्रदान कर पूर्ण विश्वास दिला दिया । उधर अन्तःपुर में सुन्दर मुख वाली अरुन्धती ने शिव के गुणों का बखान कर मेना के हृदय में शिव की भक्ति भावना उत्पन्न कर दी ।१९-२०। हरिद्रा चूर्ण ओर कुंकम से शैलराज की दाढ़ी मूछों का परिमार्जन किया गया और सभी लौकिक आचारों के द्वारा मङ्गल कार्य किये गये ।२१।

ततश्च ते चतुर्थेऽह्नि संधार्य लग्नमुत्तमम् ।
परस्परं च सन्तुष्य संजग्मुः शिवसन्निधिम् ।२२।
तत्र गत्वा शिवं नत्वा स्तुत्वा विविधसूक्तिभिः ।
उवचुः सर्वे वसिष्ठाद्या मुनवः परमेश्वरम् ।२३।
देवदेव महादेव परमेश महाप्रभो ।
शृण्वस्मद्वचनं प्रीत्या यत्कृत सेवकैस्तव ।२४।
बोधितो गिरिराजश्च मेना विविधसूक्तिभिः ।
सेतिहासं महेशान प्रबुद्धोऽसौ न संशयः ।२५।

वाक्यदत्ता गिरीन्द्रेण पार्वती ते हि नान्यथा ।
उद्वाहाय प्रगच्छ त्वं गणैदेवैश्च संयुतः ।२६।
गच्छ शीघ्रं महादेव हिमाचल गृहं प्रभो ।
विवाहय यथारीति पार्वतीमात्मजन्मने ।२७।

फिर चतुर्थ दिन उत्तम लग्न में सभी परस्पर परम सन्तुष्ट होकर भगवान् शङ्कर के समीप में पहुँचे ।२२। वहाँ जाकर सबने उनको सादर प्रणाम किया तथा अनेक सूक्तों द्वारा उनका स्तवन करके वसिष्ठादि ऋषिगण ने महेश्वर से कहा—हे देवाधिदेव ! हे महाप्रभो ! आपके चरण सेवियों ने जो कुछ किया है उसे हम निवेदन करने आये हैं आप कृपाकर सुनिये ।२३-२४। हे महेश्वर ! हम ने शैलराज और उनकी पत्नी मेना को ऐतिहासिक तथ्य सुनाकर अच्छी तरह समझा दिया है और वे निस्सन्देह इसे भली भांति समझ गये हैं ।२५। शैलराज ने वाग्दान द्वारा अपनी प्रिय पुत्री पार्वती को आपके लिये दे दिया है । अब आप सन्देह-रहित होकर समस्त देववृन्द और गणों के सहित सविधि विवाह करने के लिए वहाँ पधारिये ।२६। हे महेश्वर ! अब आप अवि-लम्ब हिमवान् के स्थान पर चलिये और रीतिपूर्वक पार्वती को अपनी पत्नी बनाने के लिये विवाह कीजिए ।२७।

शिवजी की बरात का सजाया जाना

अथ शम्भुः समाहू नन्यद्यादीन् सकलान्गणान् ।
आज्ञापयामास मुदा गन्तुं स्वेन च तत्र वै ।१।
अपि यूयं सह मया सगच्छध्वं गिरेः पुरम् ।
कियद्गणानिहस्थाप्य महोत्सवपुरः सरम् ।२।
अथ ते समनुज्ञप्ता गणेशा निर्ययुर्मुदा ।
स्वं स्वं बलमुपादाय तान् कथंचिद्वदाम्यहम् ।३
अभ्यगाच्छंखकर्णश्च गणकोट्या गणेश्वरः ।
शिवेन सार्द्ध संगन्तुं हिमाचलपुरं प्रतिः ।४।
दशकोट्या केकराक्षो गणानां स महोत्सवः ।
अष्टकोट्या च विकृती गणानां गणनायकः ।५।

ब्रह्माजी ने कहा— भगवान् महेश ने इसके अनन्तर नन्दी आदि अपने समस्त गणों को बुलाकर अपने साथ वरयात्रा में चलने के लिये आज्ञा प्रदान की। शिव ने कहा—कुछ गण तो यहाँ रहें और शेष सभी महान् उत्सव एवं उत्साह के साथ हिमाचल के नगर को चलें।१-२। ब्रह्माजी ने कहा—गण-वर्ग ने इस प्रसन्नता की बात को सुनकर जिस परम आह्लाद के साथ प्रस्थान किया मैं उसका पूरा विवरण बतलाता हूँ।३। गणराज शङ्खकर्ण अपने साथ एक करोड़ गण लेकर हिमालय की नगरी को चल दिया। देवगण गणाधिपति दश करोड़ गण साथ लेकर तथा गणेश्वर विकृत आठ करोड़ सेना लेकर बड़े ही उत्साह के साथ हिमालय के नगर को चल दिये।४-५।

चतुष्कोट्या विशाखश्च गणानां गणनायकः।
पारिजातश्च नवभिः कोटिभिर्गणपुङ्गवः।६।
षष्टिः सर्वांतकः श्रीमांस्तथैव विकृताननः।
गणानां दुन्दुभोऽष्टाभिः कोटिभिर्गणनायकः।७।
पञ्चभिश्च कपालाख्यो गणेशः कोटिभिस्तथा।
षड्भिः सन्दारको वीरो गणानां कोटिभिर्मुने।८।
कोटिकोटिभिरेवेह कन्दुकः कुण्डकस्तथा।
विष्टम्भो गणपोऽष्टाभिर्गणानां कोटिभिस्तथा।९।
सहस्रकोट्या गणपः पिप्पलो मुदितो ययौ।
तथा सनादको वीरो गणेशो मुनिसत्तम।१०।
आवेशनस्तथाऽष्टाभिः कोटिभिर्गणनायकः।
महाकेशः सहस्रेण कोटीनां गणपो ययौ।११।
कुण्डो द्वादशकोट्या हि तथा पर्वतको मुने।
अष्टाभिः कोटिभिर्वीरः समगाच्चन्द्रतापनः।१२।
कालश्च कालकश्चैव महाकालः शतेन वै।
कोटीनां गणनाथो हि तथैवाग्निकनामकः।१३।

गणनायक विशाख ने चार करोड़ गण, पारिजातगण नौ करोड़ गण, श्रीमान् सर्वान्तक और विकृतानन साठ-साठ करोड़ गण, दुन्दुभगणनायक

आठ करोड़ गण, कपाल नामधारी गरोश्वर पाँच करोड़ गण, सन्दारक वीर गणाधिपति छै करोड़ गण, विष्टम्भ गणराज अपने साथ आठ करोड़ गण, गरोश्वर पिप्पल एक सहस्र कोटि गण, सनादक गणाधीश अपने साथ एक सहस्र करोड़ गण, आवेशन आठ करोड़ गण और महाकेश नामक गण नायक अपने साथ सहस्र करोड़ गण लेकर हिमवान् के यहाँ चल दिये ।६-११। हे मुनीश्वर ! इसी तरह कुण्ड तथा पर्वतक बारह करोड़ अपना सैनिक दल साथ लेकर चल दिये और वीर चन्द्रतापन आठ करोड़ दल साथ लेकर चल दिया ।१२। काल कालक, महाकाल और अग्निक नाम वाले गणाधीश्वर अपने साथ सौ सौ करोड़ सैनिक दल लेकर चले ।१३।

कोट्याग्निमुख एवागाद् गणानां गणनायकः ।
आदित्यमूर्द्धा कोट्या च तथा चैव घनावहः ।१४
सन्नाहः शतकोट्या हि कुमुदो गणपस्तथा ।
अमोघः कोकिलश्चैव शतकोट्या गणाधिपः ।१५
सुमन्त्रः कोटिकोट्या च गणानां गणनायकः ।
काकपादोदर कोटिषष्ट्या सन्तानकस्तथा ।१६
महाबलश्च नवभिर्मधुपिंगश्च कोकिलः ।
नीलो नवत्या कोटीनां पूर्णभद्रस्तथैव च ।१७
सप्तकोट्या चतुर्वक्त्रः करणो विंशकोटिभिः ।
ययौ नवतिकोट्या तु गणेशानोऽहिरोमकः ।१८
यज्वाक्षः शतमन्युश्च मेघमन्युश्च नारद ।
तावत्कोटचा ययुः सर्वे गणेशा हि पृथक् पृथक् ।१९
काष्ठागूष्ठश्तुःषष्टचा कोटीनां गणनायकः ।
विरूपाक्षः सुकेशश्च वृषभश्च सनातनः ।२०

अग्निमुख गणनायक आदित्य मूर्धा और घनावह नामक गरोश्वरों ने भी साथ में एक एक करोड़ गण लेकर प्रस्थान किया ।१४। सन्नाह, कुमुद, अमोघ और कोकिल ने सौ-सौ करोड़ दल लेकर प्रस्थान

किया ।१५। गणनायक सुमन्त्र ने एक कोटि तथा काकपादोदर और सन्तानक ने साठ करोड़ गण लेकर प्रस्थान किया ।१६। महाबल ने नौ करोड़, कोकिल, नील, मधुपिंग और पूर्णभद्र ने नव्वे करोड़ दल के साथ गमन किया ।१७। चतुर्वक्त्र ने सात करोड़, करण ने बीस करोड़ और रोमक नाम वाले ने नव्वे करोड़ गणों का दल लेकर हिमवान् के यहाँ आगमन किया ।१८। हे नारद ! यज्वाक्ष-शतमन्यु, मेघमन्यु, ये सब नव्वे-नव्वे करोड़ दल लेकर गये ।१९। काष्ठाङ्गुष्ठ गणनायक-विरूपाक्ष और सुकेश, सनातन और वृषभ चौंसठ करोड़ दल के साथ गये ।२०।

तालकेतुः षडास्यश्च चंच्वास्यश्च सनातनः ।
संवर्तकस्तथा चैत्रो लकुलीशः स्वयं प्रभुः ।२१
लोकान्तकश्च दीप्तात्मा तथा दैत्यान्तको मुने ।
देवो भृंगिरिटिः श्रीमान्देवदेवप्रियस्तथा ।२२
अशनिर्भानुकश्चैव चतुःषष्ट्या सहस्रशः ।
ययुः शिवविवाहार्थं शिवेन सह सोत्सवाः ।२३
भूतकोटिसहस्रेण प्रथमाः कोटिभिस्त्रिभिः ।
वीरभद्रश्चतुःषष्ट्या रोमजानां त्रिकोटिभिः ।२४
कोटिकोटिसहस्राणां शतैर्विंशतिभिर्वृत्ताः ।
तत्रजग्मुश्च नन्द्याद्या गणपाः शंकरोत्सवे ।२५
क्षेत्रपालो भैरवश्च कोटिकोटिगणैर्युतः ।
उद्वाहः शंकरस्येत्याययौ प्रीत्या महोत्सवः ।२६
एते चान्य च गणपा असंख्याता महाबलाः ।
तत्र जग्मुर्महाप्रीत्या सोत्साहाः शंकरोत्सवे ।२७

हे मुने ! तालकेतु षडमुख-चञ्चुमुख सनातन-सम्वर्तक-चैत्र-लकुलीश-स्वयंन्प्रभु-लोकान्तक-दीप्तात्मा-दैत्यान्तक-देव-गिरिटि-श्रीमान् देवदेव-प्रिय-अशनि और भानुक ये चौंसठ हजार गणेश्वर महान् उत्सवोल्लास से पूर्ण होकर भगवान शङ्कर के विवाह में चल दिये ।२१।२२।२३। एक हजार करोड़ भूत, तीन करोड़ प्रमथ, चौंसठ करोड़ वीरभद्र और तीन करोड़ रोमज विवाहोत्सव में सम्मिलित होने को चल दिये।२४। ये सभी कोटि-

कोटि, सहस्र और बीस हजार करोड़ों से संयुक्त होकर विवाह में चले। इस तरह नन्दी आदि गणराज भगवान् रुद्रदेव के विवाहोत्सव का आनन्द लेने को चले।२५। क्षेत्रपाल और भैरव करोड़-करोड़ गणों के दल के साथ सुसज्जित होकर महोत्सव का सुख लेने को रवाना हुए और बहुत ही अधिक प्रेमपूर्ण होकर प्रस्थान किया।२६। इसी रीति से अन्य भी असंख्य महाबलधारी गणराज अत्यन्त प्रेम से शङ्कर के विवाहोत्सव में सम्मिलित हुए।२७।

सर्वे सहस्रहस्ताश्च जटामुकुटधारिणः।
चन्द्ररेखावतंसाश्च नीलकण्ठास्त्रिलोचनाः।२८
रुद्राक्षाभरणाः सर्वे तथा सद्भस्मधारिणः।
हारकुण्डलकेयूरमुकुटाद्यैरलङ्कृताः।२९
ब्रह्माविष्णिवन्द्रसंकाशा अणिमादिगुणयुताः।
सूर्यकोटिप्रतीकाशास्तत्र रेजुर्गणेश्वराः।३०
पृथिवीचारिणः केचित् केचित्पातालचारिणः।
केचिद्व्योमचराः केचित्सप्तस्वर्गचरा मुने।३१
किं बहूक्तेन देवर्षे सर्वलोकनिवासिनः।
अययुः स्वगणाः शम्भोः प्रीत्या वै शङ्करोत्सवे।३२
इत्थं देवैर्गणैश्चान्यैः सहितः शंकरः प्रभुः।
ययौ हिमगिरिपुरं विवाहार्थं निजस्य वै।३३
यदा जगाम सर्वेशो विवाहार्थं सुरादिभिः।
तदा तत्र ह्यभूद्वृत्तं तच्छृणु त्वं मुनीश्वर।३४
रुद्रस्य भगिनी भूत्वा चण्डी सूत्सवसंयुता।
तत्राजगाम सुप्रीत्या परेषां सुभयावहा।३५

इस विवाह के महोत्सव मैं बहुत से सहस्र कर वाले, जटाजूट तथा मुकुट धारण करने वाले, मस्तक पर चन्द्र रेखाधारी, नीले कण्ठ वाले तीन नेत्र से युक्त, समस्त रुद्राक्ष मालाधारी, सद्भस्म से भूषित अङ्ग वाले, हारकेयूर-कुण्डल-मुकुट आदि से समलंकृत शरीर वाले, ब्रह्मा, विष्णु और महेन्द्र के तुल्य, अणिमादि सिद्धियों के गुणगण से भूषित

और सूर्य के समान तेज के प्रकाश वाले गणेश्वर शोभित हुये थे ।२८-३०। इन सब में कुछ भूमि बिहारी तो कोई गगनचारी और कोई पाताल में विचरण करने वाले एवं कुछ सातों स्वर्ग में पर्यटन करने वाले थे ।३१। हे महर्षे ! अधिक कहाँ तक वर्णन किया जावे इस महेश्वर के विवाह के महोत्सव में आनन्द का लाभ पाने के लिये समस्त लोकों के निवासी बड़े ही प्रेम के साथ सम्मिलित हुए ।३२। इस तरह भगवान् शम्भु समस्त देवगण के साथ अपने विवाह के लिये हिमवान् के नगर में गये ।३३। हे नारद ! जब भगवान् महेश्वर देवगण के साथ अपना विवाह करने गये उस समय जो कुछ भी हुआ उसको मैं सुनाता हूँ उसे आप सुनिये ।३४। शत्रुओं को भय देने वाली रुद्र की भगिनी होकर चण्डी भी बड़े उत्साह के साथ प्रेमपूर्वक वहाँ आई ।३५।

प्रेतासनसमारूढा सर्पाभरणभूषिता ।
पूर्ण कलशमादाय हैमं मूर्ध्नि महाप्रभम् ।३६
स्वपरीवारसंयुक्ता दीप्तास्या दीप्तलोचना ।
कुतूहलं प्रकुर्वन्ती जातहर्षा महाबला ।३७
तत्रभूतगणा दिव्या विरूपाः कोटिशो मुने ।
विराजन्ते स्म बहुशस्तथा नानाविधास्तदा ।३८
तैः समेताऽग्रतश्चण्डी जगाम विकृतानना ।
कुतूहलान्विता प्रीता प्रीत्युपद्रवकारिणी ।३९
चण्ड्या सर्वे रुद्रगणाः पृष्ठतश्च कृतास्तदा ।
कोट्येकादशसंख्याका रौद्ररुद्रप्रियाश्च ते ।४०
तदा डमरुनिर्घोषैर्व्याप्तमासीज्जगत्त्रयम् ।
भेरीझंकारशब्देन शंखानां निनदेन च ।४१
तदा दुन्दुभिनिर्घोषैः शब्दः कोलाहलोऽभवत् ।
कुर्वञ्जगन्मंगलं च नाशयेन्मङ्गलेतरत् ।४२

हे मुने ! प्रेतासन पर स्थित सर्पों के आभरणों से विभूषितांग वाली, मस्तक पर महाकान्ति युक्त सुवर्ण कलश को धारण किये, अपने परिकर से

युक्त, दीप्त मुख वाली और दीप्तिपूर्ण नेत्र वाली प्रसन्नता से प्रफुल्ल विविध कुतूहल करती हुई, प्रसन्नमुखी, महाबल वाली भगवती वहाँ आई तथा करोड़ों दिव्य भूत और अनेकों नाना प्रकार वाले विरूपाक्ष भी वहाँ उत्सव में शोभित होने लगे ।३६-३८। इस सब के सहित विकट मुख वाली भगवती चण्डी बड़े प्रेम से प्रीतिमय उपद्रव करती हुई वहाँ उपस्थित हो गई। उस समय चण्डी ग्यारह करोड़ रुद्र के गणों को पीछे कर स्वयं आगे हो गई। उस समारोह में डमरू की ध्वनि की तुमुलता से त्रिभुवन एकदम आकुल होगये। साथ ही भेरी की झंकार और शङ्खों की घोर ध्वनि सर्वत्र फैल गई ।४०-४१। उस समय दुन्दुभियों के निर्घोष के द्वारा महान् कोलाहल होने लगा जिससे जगत् के समस्त अमङ्गल भाग जावें और सर्वत्र जगत् मङ्गलमय हो जावे ।४२।

गणनां पृष्ठतो भूत्वा सर्वे देवाः समुत्सुकाः ।
अन्वयुः सर्वसिद्धांश्च लोकपालादिका मुने ।४३
मध्ये व्रजन् रमेशोऽथ गरुडासनमाश्रितः ।
शुशुभे ध्रियमाणेन छत्रेण महता मुने ।४४
चामरैर्वीज्यमानोऽसौ स्वगणैः परिवारितः ।
पार्षदैर्विलसद्भिश्च स्वभूषाविधिभूषितः ।।४५
तथाऽहमप्यशोभं वै व्रजन्मार्गे विराजितः ।
वेदैर्मूर्तिधरः शास्त्रैः पुराणैरागमैस्तथा ।४६
सनकादिमहासिद्धैः सप्रजापतिभिः सुतैः ।
परिवारैः संयुतो हि शिवसेवनतत्परः ।४७
स्वसैन्यमध्यगः शक्र ऐरावतगजस्थितः ।
नानाविभूषितोऽत्यन्तं व्रजन् रेजे सुरेश्वरः ।४८
तदा तु व्रजमानास्ते ऋषयो बहवश्च ते ।
विरेजुरति सोत्कण्ठाः शिवस्योद्वाहनं प्रति ।४९

ऐसे निर्घोषकारी गणों के पीछे पूर्ण उत्कण्ठा से युक्त देवों से प्रस्थान किया और उनके पीछे समस्त सिद्धियां तथा लोकपाल आदि ने प्रयाण

किया ।४३। इन सब के मध्य भाग में गरुड़ पर समासीन कान्तिमय महान् छत्र से युक्त वैकुण्ठनाथ ने प्रयाण किया। भगवान् विष्णु पार्षदों द्वारा चमर से वीज्यमान अपने परिकर के सहित दिव्याभूषणों से भूषित थे ।४४-४५। हे नारद ! उस विवाह यात्रा में इसी तरह मार्ग में प्रयाण करने वाला मैं भी था। मेरे साथ मूर्तिमान् वेद, समस्त शास्त्र और पुराण भी चल रहे थे ।४६। महासिद्ध सनकादि, प्रजापति पुत्र तथा परिवार के सहित मैं शिवजी की सेवा करने में परायण हो रहा था ।४७। इसी प्रकार अपने ऐरावत हाथी पर विराजमान देवराज महेन्द्र भी अपने समस्त परिवार से युक्त वहाँ शोभायमान हो रहे थे। वे अनेकानेक दिव्य आभूषणों से अलंकृत वरयात्रा के मार्ग की शोभा वृद्धि कर रहे थे ।४८। महर्षियों का समुदाय भी शिव के विवाह देखने की उत्कण्ठा लिये हुए वरयात्रा में अपूर्व शोभा बढ़ा रहे थे ।४९।

शाकिन्यो यातुधानाश्च वेताला ब्रह्मराक्षसाः ।
भूतप्रेतपिचाशाश्च तथाऽन्ये प्रमथादयः ।५०
तुम्बुरुर्नारदो हाहा हूहूश्चेत्यादयो वराः ।
गन्धर्वाः किन्नरा जग्मुर्वाद्यानाध्माय हर्षिताः ।५१
जगतो मातरः सर्वा देवकन्याश्च सर्वशः ।
गायत्री चैव सावित्री लक्ष्मीरन्याः सुरस्त्रियः ।५२
एताश्चान्याश्च देवानां पत्नयो भवमातरः ।
उद्वाहः शङ्करस्येति जग्मुः सर्वा मुदान्विताः ।५३
शुद्धस्फटिकसंकाशो वृषभः सर्वसुन्दरः ।
यो धर्म उच्यते वेदैः शास्त्रैः सिद्धमहर्षिभिः ।।५४
तस्मारूढो महादेवो वृषभं धर्मवत्सलः ।
शुशुभेऽतीव देवर्षिसेवितः संकलैर्व्रजन् ।५५
एभिः समेतैः सकलैर्महर्षिभिर्बभौ महेशो बहुशोऽत्यलंकृतः ।
हिमालयाह्वास्यधरस्यसंव्रजन्पाणिग्रहार्थं सदनं शिवायाः ।५६

शिबजी की बरात में यातुधानी—शाकिनी—वेताल-ब्रह्म राक्षस-भूत-प्रेत पिशाच-प्रमथ-तुम्बरु-नारद-हाहा-हूहू-किन्नरगण-श्रेष्ठ गन्धर्व आदि

सभी परमाह्लाद प्रदर्शन करते हुए मुख और हाथ के वाद्य बजाते हुए प्रयाण कर रहे थे ।५०-५१। समस्त जगत् की मातायें, गायत्री, लक्ष्मी, सावित्री, सब देवकन्यायें, देवांगनायें आदि नारी वर्ग के समूह भगवान् शंकर के विवाहोत्सव में प्रसन्नता के साथ सम्मिलित हुए ।५२-५३। हे महर्षे ! विशुद्ध स्फटिक के तुल्य दीप्तिमान् परम सुन्दर वृषभ पर भगवान् महेश्वर विराजमान हुये । इस वृषभ को बड़े-बड़े सिद्ध महर्षियों ने शास्त्र में धर्म बतलाया है । धर्म वत्सल शिव सबके साथ वृषभ पर जाते हुए अत्यन्त शोभित हुये ।५४-५५। इस रीति से समस्त महर्षियों के साथ जाते हुये शंकर परम शोभायमान हुये । उस समय सबने देखा कि आज रुद्रदेव पार्वती के पाणि को ग्रहण करने के लिये हिमाचल के स्थान पर पदार्पण कर रहे हैं ।५६।

।। शिव-पार्वती का विवाहोत्सव ।।

एतस्मिन्नंतरे तत्र गर्गाचार्य्यप्रणोदितः ।
हिमवान्मेनया सार्द्धं कन्यां दातुं प्रचक्रमे ।१।
हेमं कलशमादाय मेना चार्द्धांगमाश्रिता ।
हिमाद्रिश्च महाभागो वस्त्राभरणभूषितः ।२।
पाद्यादिभिस्ततः शैलः प्रहृष्टः सपुरोहितः ।
तं वरं वरयामास वस्त्रचन्दनभूषणैः ।३।
ततो हिमाद्रिणा प्रोक्ता द्विजास्तिथ्यादिकीर्तनैः ।
प्रयोगो भण्यतां तावदस्मिन्समय आगते ।४।
तथेति चोक्ता ते सर्वे कालज्ञा द्विजसत्तमाः ।
तिथ्यादिकीर्तनं चक्रुः प्रीत्या परमनिर्वृताः ।५।
अथ ते पवतश्रेष्ठा मेर्वाद्या जातसंभ्रमाः ।
ऊचुस्ते चैकपद्येन हिमवंतं नगेश्वरम् ।६।
कन्यादाने स्थीयतां चाद्य शैलनाथोक्त्या किं कार्यनाशस्तवैव ।
सत्यंब्रू मोनात्रकार्योविमर्शस्तस्मात्कन्या दीयतामीश्वराय ।७।

ब्रह्माजी ने कहा—गर्गाचार्य की प्रेरणा से उसी अवसर पर प्रेरित होकर हिमालय ने अपनी पत्नी मेना के साथ कन्या के दान करने की

इच्छा की ।१। महाभाग्यशालिनी मेना दिव्य वस्त्राभूषणों से समलंकृत होकर सुवर्ण का एक कलश हाथ में लेकर पर्वत-राज हिमवान के वाम भाग में स्थित हो गई ।२। इसके पश्चात् हिमाचल ने परम प्रसन्नता के साथ अपने पुरोहित के साथ अर्घ्य-पाद्य और चन्दन-वस्त्रादि देते हुए वर का वरण किया ।३। इसके अनन्तर हिमवान् ने ब्राह्मण-वृन्द को तिथ्यादि का कीर्त्तन करने के कार्य के लिए नियुक्त किया और जब समय उपस्थित हो गया तब यह कहा गया कि अब समय आ गया है कि तिथि आदि का प्रयोग करना चाहिये ।४। यह सुनकर समय का ज्ञान रखने वाले परम श्रेष्ठ ब्राह्मण अति शान्ति के साथ प्रेमपूर्वक तिथि आदि का संकीर्तन करने लगे ।५। उस समय गिरिश्रेष्ठ मेरु आदि सबने सम्भ्रमपूर्वक एक ही साथ पर्वत-राज हिमालय से कहा—हे शैलराज ! आप अब कन्या के दान करने के कार्य को सम्पन्न कीजिये, विलम्ब करने से लग्न निकल जायगी और कार्य का नाश होगा। अब अन्य कुछ भी विचार करने की आवश्यकता नहीं है। आप भगवान् शंकर को अपनी कन्या देने का आयोजन करिये ।६-७।

तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां सुहृदां स हिमालयः ।
स्वकन्यादानमकरोच्छिवाय विधिनोदितः ।८।
इमां कन्यां तुभ्यमहं ददामि परमेश्वर ।
भार्यार्थं परिगृह्णीष्व प्रसीद सकलेश्वर ।९।
तस्मै रुद्राय महते मन्त्रेणानेन दत्तवान् ।
हिमाचलो निजां कन्यां पार्वतीं त्रिजगत्प्रसूम् ।१०।
इत्थं शिवाकरं शैलं शिवहस्ते निधाय च ।
मुमोदातीव मनसि तीर्णं काममहार्णवः ।११।
वेदमन्त्रेण गिरिशो गिरिजाकरपंकजम् ।
जग्राह स्वकरेणाशु प्रसन्नः परमेश्वरः ।१२।
क्षितिं संस्पृश्य कामस्य कोऽदादिति मनुं मुने ।
पपाठ शङ्करः प्रीत्यः दर्शयंल्लौकिकीं गतिम् ।१३।
महोत्सवो महानासोत्सर्वत्र प्रमुदावहः ।

बभव जयसंरावो दिवि भुव्यंतरिक्षके ।१४।

ब्रह्माजी ने कहा—हिमवान् ने ऐसे वचन श्रवण कर विधि-विधान के साथ अपनी कन्या का दान कर दिया ।८। हिमवान् ने कहा—हे परमेश्वर! मैं आज अपनी इस कन्या का दान आपको कर रहा हूँ। हे सर्वेश्वर ! अब आप इसको अपनी प्रिय पत्नी के स्वरूप में स्वीकार कीजिए ।९। इस तरह उस समय त्रिभुवन की उत्पत्ति करने वाली जगदम्बा पार्वती का मन्त्रोच्चारण के साथ शंकर को दान कर दिया ।१०। हिमालय अपनी आत्मजा पार्वती का हाथ भगवान् शंकर के हाथमें सौंपकर अथाह सागर से पार हो जाने के समान अपने हृदय में परम प्रसन्न हुये ।११। जब हिमवान् ने परमेश्वर को वेद-मन्त्रों के साथ अपनी कन्या का समर्पण कर दिया तो शिव ने परम प्रसन्नता के साथ जगज्जननी गिरिजा का पाणि-ग्रहण कर लिया ।१२। हे मुनीश्वर ! फिर लौकिक गति का प्रदर्शन करते हुए भगवान् शंकर ने भूमि का स्पर्श करके "कोदात् कारतादांत्" इत्यादि मन्त्र का प्रेम के सहित उच्चारण किया ।१३। उस समय सर्वत्र परमानन्द का प्रदान करने वाला महान् उत्सव मनाया गया और त्रिभुवन में जय-जयकार की ध्वनि छा गई ।१४।

साधुशब्दं नमः शब्दं चक्रुःसर्वेतिहर्षिताः ।
गन्धर्वाः सुजागुः प्रीत्या ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।१५।
हिमाचलस्य पौरा हि मुमुदुश्चाति चेतसि ।
मङ्गलं महदासीद्धै महोत्सवपुरःसरम् ।१६।
अहं विष्णुश्च चक्रश्च निर्जरा मुनयोऽखिलाः ।
हर्षिता ह्यभवंश्चाति प्रफुल्लवदनाम्बुजाः ।१७।
अथ शैलवरः सोदात्सुप्रसन्नो हिमाचलः ।
शिवाय कन्यादानस्य सांगतां सुयथोचिताम् ।१८।
ततो बन्धुजनास्तस्य शिवां सम्पूज्य भक्तितः ।
ददुः शिवाय सद्द्रव्यं नानाविधिविधानतः ।१९।
हिमालयस्तुष्टमनाः पार्वतीशिवप्रीयये ।
नानाविविधानि द्रव्याणि ददौ तत्र मुनीश्वर ।२०।

यौतुकानि ददौ तस्मै रत्नानि विविधानि च ।
चारुरत्न विकाराणि पात्राणि विविधानि ।२१।

सभी लोग प्रसन्नता से "साधु-साधु" और नमः' इस शब्द का उच्चारण करने लगे । प्रेम सहित गन्धर्वगण गान करने लगे और अप्सरायें नृत्य करने में तत्पर हो गईं ।१५। हिमालय के पुर के निवासी लोग भी अपने मन में अत्यन्त आह्लादित हुए तथा सब जगह मंगलमय महोत्सव मानने लगे ।१६। ब्रह्माजी ने कहा—मैं, भगवान् विष्णु और देवराज इन्द्र, मुनि एवं अन्य समस्त देवगण प्रफुल्लित मुख वाले होकर अत्यन्त प्रसन्न हुए ।१७। पर्वतराज हिमालय अपनी कन्या के दान की साँग सम्पन्नता करने के लिये तत्पर हुये और शंकर को यथोचित सामग्री प्रदान की ।१८। अन्य समस्त बन्धु-बान्धव-जनों ने भी बड़े भक्ति-भाव से पार्वती का अर्चन कर शिव और शिवा को सविधि श्रेष्ठतम धन दिया ।१९। हिमालय ने शिव-पार्वती को प्रसन्न एवं सन्तुष्ट करने के लिये अनेक विभवयुक्त वस्तुयें प्रदान कीं । हे मुनीश्वर ! गिरिराज ने कन्या के दहेज में रत्नों से जटित पात्र एवं बहुमूल्य रत्न प्रदान किये ।२०-२१।

गवां लक्षं हयानां च सज्जितानां शतं तथा ।
दासीनामनुरक्तानां लक्षं सद्द्रव्यभूषितम् ।२२।
नागानां शतलक्षं हि रथानां च तथा मुने ।
सुवर्ण जटितानां च रत्नसारविनिर्मितम् ।२३।
इत्थं हिमालयो दत्त्वा स्वसुतां गिरिजां शिवाम् ।
शिवाय परमेशाय विधिनाऽऽप कृतार्थताम् ।२४।
अथ शैलवरो माध्यंदिनोक्तस्तोत्रतो मुदा ।
तुष्टाव परमेशान सद्गिरा सुकृतांजलिः ।२५।
ततो वेदविदा तेनाज्ञप्ता मुनिगणास्तदा ।
शिरोऽभिषेकं चक्रुस्ते शिवाया परमोत्सवाः ।२६।
देवाभिधानमुच्चार्य्य पर्य्युक्षणविधिं व्यधुः ।
महोत्सवस्तदा चासीन्महानन्दकरो मुने ।२७।

एक लाख दूध वाली गौ, सुसज्जित सौ अश्व और गिरिनन्दिनी में सौहार्द भाव वाली श्रेष्ठ रत्नों से विभूषित एक लाख परिचारिकायें दीं ।२२। एक करोड़ हाथी और रथ दिये जोकि रत्न एवं सुवर्ण से मण्डित एवं जटिल थे ।२३। हिमवान् ने उदारतापूर्वक दिल खोलकर बहुत-सा सामान दहेज में पार्वती और शिव को देकर सफलता का लाभ प्राप्त किया ।२४। इस सब कुछ करने के पश्चात् हिमालय ने यजुर्वेद की माध्यन्दिनी शाखा के स्तोत्र के द्वारा स्तवन कर हाथ जोड़ते हुए अपनी श्रेष्ठ वाणी से भगवान् शिव को प्रसन्न किया ।२५। वेद के ज्ञाताओं ने आज्ञा प्राप्त कर अत्यन्त उत्साह के साथ भवानी का अभिषेक करना आरम्भ किया ।२६। देव अभिधान का उच्चारण करते हुये उन्होंने पर्युक्षण विधि का विधान सम्पन्न किया । हे मुनिराज ! बड़े ही आनन्द का प्रदान करने वाला महान् उत्सव उस समय हुआ जोकि वाणी द्वारा वर्णित नहीं किया जा सकता है ।२७।

द्विज-पत्नी द्वारा पार्वती को पतिव्रत धर्म का उपदेश

अथ सप्तर्षयस्ते च प्रोचुर्हिमगिरीश्वरम् ।
कारयस्वात्मजादेव्या यात्रामद्योचितां गिरे ।१।
इतिश्रुत्वा गिरीशो हि बुद्ध्वा तद्विरहं परम् ।
विषण्णोऽभून्महाप्रेम्ण कियत्कालं मुनीश्वर ।२।
कियत्कालेन सम्प्राप्य चेतनां शलराट् ततः ।
तथाऽस्त्विति गिरामुक्त्वा मेनां सन्देशमब्रवीत् ।३।
शैलसन्देशमाकर्ण्य हर्षशोकवशा मुने ।
मेना संयापयामास कर्त्तुमासीत्समुद्यता ।४।
श्रुतिस्वकुलजाचारं चचार विधिवन्मुने ।
उत्सवं विवधं तत्र सा मेना क्षितिभृत्प्रिया ।५।
गिरिजां भूषयामास नानारत्नांशुकैर्वरैः ।
द्वादशाभरणैश्चैव शृङ्गारैर्नृपसम्मितैः ।६।
मेना मनोगतिं बुद्ध्वा साध्व्येका द्विजकामिनी ।
गिरिजां शिक्षयामास पातिव्रत्यव्रतं परम् ।७।

ब्रह्माजी ने कहा— सप्त-ऋषियों ने हिमवान् के समीप उपस्थित होकर कहा—हे गिरिराज ! आज परम शुभ दिन हैं, अतएव अब आप पार्वती की विदा यात्रा करा दीजिए ।१। हे महामुने ! अपनी पुत्री की विदाई करने की बात सुनकर हिमवान् पार्वती भावी महान् वियोग से कुछ समय तक बहुत व्याकुल हो गये ।२। कुछ समय पश्चात् चेतना प्राप्त कर हिमालय ने कहा—ऐसा ही किया जायगा और इसका सन्देश अन्तःपुर में मेना के पास भेज दिया ।३। हे मुनीश्वर ! पति के इस सन्देश से मेना को हर्ष और शोक दोनों ही हुए किन्तु उसने पुत्री की विदा करने का साज-सामान सब इकट्ठा कर लिया ।४। हे मुने ! हिमवान् की पत्नी ने वेद और कुल का सम्पूर्ण आचार, सविधि करके विदाई के उत्सव का सम्पादन किया ।५। अनेक प्रकार के रत्नाभरणों से तथा दिव्य वस्त्रादि से पार्वती को विभूषित कर द्वादस नृपोचित भूषणों द्वारा उसका शृङ्गार किया ।६। इसके अनन्तर महारानी मेना का हार्दिक विचार समझकर एक पतिव्रता ब्राह्मणी ने गिरिजा को परम पवित्र पतिव्रता धर्म की शिक्षा देना आरम्भ किया ।७।

गिरिजे शृणु सुप्रीत्या मद्वचो धर्मवर्द्धनम् ।
इहामुत्रानन्दकरं शृण्वतां च सुखप्रदम् ।८।
धन्या पतिव्रता नारी नान्या पूज्या विशेषतः ।
पावनी सर्वलोकानां सर्वपापौघनाशिनी ।९।
सेवते या पतिं प्रेम्णा परमेश्वरवच्छिवे ।
इह भुक्त्वाखिलान्भोगानन्ते पत्या शिवां गतिम् ।१०।
पतिव्रता च सावित्री लोपामुद्रा ह्यरुन्धती ।
शाण्डिल्या शतरूपानुसूया लक्ष्मीः स्वधा सती ।११।
सञ्ज्ञा च सुमतिः श्रद्धा मेना स्वाहा तथैव च ।
अन्या बह्वचोऽपि साध्व्यो हि नोक्ता विस्तारजाद्भयात् ।१२।
पतिव्रत्यवृषेणैव ता गताः सर्वपूज्यताम् ।
ब्रह्मविष्णुहरैश्चापि मान्या जाता मुनीश्वरैः ।१३।
सेव्यस्त्वया पतिस्तस्मात्सर्वदा शंकरः प्रभुः ।

दीनानुग्रहकर्ता च सर्वसेव्यः सतां गतिः ।१७।

द्विज पत्नी ने कहा—हे पार्वती ! अब तुम धर्म की वृद्धि करने वाले मेरे कतिपय उपदेश श्रवण करो जोकि उभय लोक में आनन्दप्रद और सुनने वालों को परम सुख देने वाले हैं ।८। संसार में पतिव्रता नारी ही सबको पवित्र करने वाली और सब तरह के पापों का नाश करने वाली होती है । अन्य कोई भी नहीं हो सकती है ।६। हे शिवे ! जो नारी अपने स्वामी को ही परमेश्वर समझकर उसकी बड़े प्रेमोत्साह से सेवा किया करती है वह यहाँ समस्त सुखप्रद भोगों का उपभोग कर अन्त में पति-लोक का लाभ प्राप्त करती है ।१०। नारियों में उदाहरणीय पतिव्रता सावित्री, अरुन्धती, शाण्डिल्या, लोपामुद्रा, शतरूपा, लक्ष्मी, अनुसूया, स्वधा और सती कही जाती हैं ।११। इनके अतिरिक्त सुमति, श्रद्धा, मेना स्वाहा आदि अन्य भी बहुत पतिव्रता हैं । विस्तार के भय से उन सबका वर्णन अब मैं नहीं करना चाहती हूँ ।१२। पतिव्रत धर्म के महामहिम प्रभाव के कारण ही ये सब संसार में वन्दनीय एवं मान्य होगई हैं और ब्रह्मा, विष्णु और महेश ने भी तथा अन्य बड़े महर्षियों ने इनका अत्यन्त सम्मान किया है ।१३। मेरे कथन का सार यही है कि इसी प्रकार अपने पतिदेव भगवान् शंकर की भक्ति भाव से सेवा करती रहना । ये सत्पुरुषों का उद्धार करने वाले, दीनों पर परम दयालु और समस्त चराचर के द्वारा सेवित हैं ।१४।

महान्पतिव्रताधर्मः श्रुतिस्मृतिषु नोदितः ।
यथेव वर्ण्यते श्रेष्ठो न तथान्योऽस्ति निश्यतम् ।१५।
भुंज्याद्भुक्ते प्रिये पत्यौ पातिव्रत्यपरायणा ।
तिष्ठेत्तस्मिञ्छिबे नारी सर्वथा सति तिष्ठति ।१६।
स्वप्यात्स्वपति सा नित्यं बुध्येत्तु प्रथमं सुधीः ।
सर्वदा तद्धितं कुर्यादकैतवगतिः प्रिया ।१६।
अनलंकृतमात्मानं दर्शयेन्न क्वचिच्छिवे ।
कार्यार्थं प्रोषिते तस्मिन्भवेन्मण्डनवर्जिता ।१८।
पत्युर्नाम न गृह्णीयात् कदाचन पतिव्रता ।

आक्रुष्टापि न चाक्रोशेत्प्र सीदेत्ताडितापि च ।
हन्यतामिति च ब्रूयात्स्वामिन्निति कृपां कुरु ।१९।
आहूता गृहकार्याणि त्यक्त्वा गृच्छेत्तादन्तिकम् ।
सत्वरं साञ्जलिः प्रीत्या सुप्रणम्य वदेदिति ।२०।
किमर्थंव्याहृता नाथ स प्रसादो विधीयताम् ।
तदादिष्टा चरेत्कर्म सुप्रसन्नेन चेतसा ।२१।

परम पावन पतिव्रत धर्म का महत्व श्रुति, स्मृतियों में विशद रूप से लिखा हुआ है । ऐसा अच्छा अन्यत्र कहीं भी नहीं है इसे निश्चित समझ लेना ।१५। अपने स्वामी के भोजन कर लेने के पश्चात् पति की भक्ति में परायण नारी को स्वयं भोजन करना चाहिये ।१६। पतिदेव के शयन करने के पीछे शवन करे और स्वामी के उठने के पूर्व शय्या त्याग कर देवे । सदा निश्चय भाव से परम प्रिय बनकर सेवा करे और पति का हित-चिन्तन करती रहे ।१७। सदा अपने पति के समक्ष में समलंकृत होकर ही जाना चाहिये । जब स्वामी विदेश यात्रादि को गये हों तो श्रृंगार कभी नहीं करे ।१८। पतिव्रता नारी को अपने पति का नाम कभी नहीं लेना चाहिए । स्वामी के बुरे एवं तिरस्कार के वचन सुन कर भी उत्तर में बुरे वचन कभी न कहे । ताड़ना और भर्त्सना पाकर भी स्वामी से कृपा करने की ही याचना करनी चाहिये ।१९। पतिव्रता को स्वामी के बुलाने पर तुरन्त अन्य समस्त कार्यों को छोड़कर पति के समीप जाना चाहिए और प्रणामपूर्वक हाथ जोड़कर उनसे प्रार्थना करे ।२०। हे पतिदेव ! आपने मुझ दासी को किस कार्य के लिए बुलाने की कृपा की है । पति जो भी उस समय आज्ञा देवें उसे प्रसन्नता से पूरा करे ।२१।

चिरन्तिष्ठेन्न च द्वारे गच्छेन्न व परालये ।
आदाम तत्त्वं यत्किंचित्कस्मैचिन्नार्पयेत्क्वचित् ।२२।
पूजोपकरणं सर्वमनुक्ता साधयेत्स्वयम् ।
प्रतीक्षमाणाऽवसरं यथाकालोचितं हितम् ।२३।
न गच्छेत्तीर्थयात्रां वै पत्याज्ञां न विना क्वचित् ।

दूरतो वर्जयेत्सा हि समाजोत्सवदर्शनम् ।२४।
तीर्थार्थिनी तु या नारी पतिपादोदकं पिबेत् ।
तस्मिन्सर्वाणि तीर्थानि क्षेत्राणि च न संशयः ।२५।
भुंज्यात्मा भर्तुरुच्छिष्टमिष्टमन्नादिकं च यत् ।
महाप्रसाद इत्युक्त्वा पतिदत्तं पतिव्रता ।२६।
अविभज्य न चाश्नीयाद्देवपित्रतिथिष्वपि ।
परिचारकवर्गेषु गोषु भिक्षुकुसेषु ।२७।
संयतोपस्करा दक्षा हृष्टा व्ययपराङ्मुखी ।
भवेत्सा सर्वदा देवी पतिव्रतपरायणा ।२८।

पतिव्रता नारी घर के द्वार पर अधिक समय तक न रहे, अन्य प्रतिवासी आदि के घर में न जावे और जो कुछ भी श्रवण कर ले उसे दूसरों से कहे ।२२। बिना कहे ही पूजा की समस्त सामिग्री एकत्रित करने का कार्य सम्पन्न करे और सर्वदा अपने हित करने वाले अवसर को देखती रहना चाहिए ।२३। पति के आदेश के बिना कहीं भी तीर्थ यात्रा आदि के लिए पतिव्रता को कहीं नहीं जाना चाहिए तथा समाज एवं उत्सव आदि में भी कहीं न जावे ।२४। जिस स्त्री को तीर्थाटन आदि करने की उत्कृष्ट अभिलाषा होती हो उसे अपने स्वामी के चरणोदक को सादर ग्रहण करना चाहिये । पतिव्रता के लिए निस्संदेह उसमें ही समस्त धाम, क्षेत्र और महा तीर्थ निवास किया करते हैं ।२५। अपने स्वामी के भोजन करने के पश्चात् जो कुछ भी मिष्ठान्नादि शेष रहे उसे पतिदेव के द्वारा प्रदत्त महाप्रसाद समझ कर पतिव्रता को सप्रेम भोजन करना चाहिये ।२६। पतिव्रत धर्म की मर्यादानुसार सदा देव, पितरगण और अतिथियों को पहले समर्पित करके स्वयं खाना चाहिये । सेवक वर्ग, गौ और भिक्षक को भी यथासमय आदर पूर्वक देवे ।२७। नारी को घर की समस्त सामग्री का संग्रह करने का कौशल परम आवश्यक है । सदा प्रसन्नचित रहे और व्यय अधिक न करे और इन सब पातिव्रत धर्म के नियमों के पूर्ण पालन में परायण रहना चाहिए ।२८।

कुर्यात्पत्यननुज्ञाता नोपवासव्रतादिकम् ।

अन्यथा तत्फलं नास्ति परत्र नरकं व्रजेत् ।२९।
सुखपूर्वं सुखासीनं रममाणं यदृच्छया ।
आन्तरेष्वपि कार्येषु पतिं नोत्थापयेत्क्वचित् ।३०।
क्लीबं वा दुरवस्थं वा व्याधितं वृद्धमेव च ।
सुखितं दुःखितं वापि पतिमेकं न लंघयेत् ।३१।
स्त्रीधर्मिणी त्रिरात्रं च स्वमुखं नैव दर्शयेत् ।
स्ववाक्यं श्रावयेन्नापि यावत्स्नानान्न शुध्यति ।३२।
सुस्नाता भर्तृवदनमीक्षेतान्यस्य न क्वचित् ।
अथवा मनसि ध्यात्वा पतिं भानुं विलोकयेत् ।३३।
हरिद्राकुंकुम चैव सिन्दूरं कज्जलादिकम् ।
कूर्पासकञ्च ताम्बूलं मांगल्याभरणादिकम् ।३४।
केशसंस्कारकबरीकरकर्णादिभूषणम् ।
भर्तुरायुष्यमिच्छन्ती दूरयेन्न पतिव्रता ।३५।

पतिव्रता नारी को पति की आज्ञा के बिना व्रतोपवास आदि नहीं करना चाहिए । आज्ञा के बिना इसका करना निष्फल हो जाता है और परकोक में नरक गामिनी होना पड़ता है ।२९। सुख के साथ बैठे हुए और स्वेच्छया रमण करने वाले पति को कभी अन्य कार्य के लिए नहीं उठावे ।३०। पतिव्रता नारी का धर्म है कि वह दुरवस्थाग्रस्त, व्याधियुक्त, वृद्धता को प्राप्त और पुंस्त्वहीन सुखी, दुःखी कैसा भी क्यों न हो, अपने पति का तिरस्कारा न करे ।३१। जब मासिक धर्म में नारी रहे तो उसे तीन रात तक अपना मुख नहीं दिखाना चाहिए और शुद्धि-स्नान के पहले अपना शब्द भी नहीं सुनावे ।३२। चतुर्थ दिन शुद्ध स्नान कर सर्व प्रथम पतिव्रता नारी अपने स्वामी का मुख-दर्शन करे, अन्य किसी का नहीं । यदि पति कहीं अन्यत्र हों तो उनका ध्यान करके सूर्य का दर्शन करे ।३३। शुद्ध स्नान कर हल्दी, कुंकुम, सिन्दूर, कज्जल और कूर्पासक (चोली) तथा मंगलमय भूषण और दिव्य वस्त्र धारण करे एवं ताम्बूल आदि का सेवन करे ।३४। उस अवसर पर सुचारुता से अपने केशों का संस्कार कर केशपाश को भली भाँति सम्भाल लेवे । कर, कण्ठ और

कानों में भूषण पहने। अपने स्वामी की आयु की वृद्धि कामना करती हुई पतिव्रता स्वामी से तब दूर न रहे।३५।

न रजक्या न बन्धक्या तथा श्रमणया न च।
न च दुर्भगया क्वापि सखित्वं कारयेत्क्वचित्।३६।
पतिविद्वेषिणीं नारीं न सा संभाषयेत्क्वचित्।
नैकाकिनी क्वचित्तिष्ठेन्नग्ना स्नायान्न च क्वचित्।३७।
नोलुखने न मुसले न वर्द्धन्यां दृषद्यपि।
न यंत्रके न देहल्यां सती च प्रवसेत्क्वचित्।३८।
विना व्यवायसमयं प्रागल्भ्यं नाचरेत्क्वचित्।
यत्र यत्र रुचिर्भर्तुस्तत्र प्रेमवती भवेत्।३९।
हृष्टा हृष्टे विषण्णा स्याद्विषण्णास्ये प्रिये प्रिया।
पतिव्रता भवेद्देवी सदा पतिहितैषिणी।४०।
एकरूपा भवेत्पुण्या संपत्सु च विपत्सु च।
विकृतिं स्वात्मनः क्वापि न कुर्याद्धैर्य्यधारिणी।४१।
सर्पिलंवणतैलादिक्षयेऽपि च पतिव्रता।
पतिं नास्तीति न ब्रूयादायासेषु न योजयेत्।४२।

धोविन, व्यभिचारिणी, संयासिनी और दुर्भाग्य वाली स्त्री से पतिव्रता को कभी मित्रता तथा अधिक भाषण नहीं करना चाहिए।३६। जो स्त्री अपने स्वामी से द्वेषभाव रखती हो ऐसी स्त्री से कभी वार्त्तालाप न करे। कभी एकान्त में अकेली न रहे और बिल्कुल नग्न होकर कभी स्नान न करे।३७। ओखली, मूसल, बुहारी, पाषाण-यन्त्र और देहली के निकट सती स्त्री को कभी शयन नहीं करना चाहिये।३८। किसी उचित एवं उपयुक्त समय के न होने पर सती नारी को प्रगल्भता नहीं करनी चाहिए। जिन वस्तुओं तथा कार्यों में अपने पति की विशेष रुचि हो उनमें पतिव्रत नारी को भी प्रेम करना चाहिए।३९। अपना स्वामी विषादयुक्त हो तो स्वयं भी विषण्ण रहे, जो पति प्रसन्न हो तो आप भी प्रसन्नता से रहे। प्रिय के प्रति प्रिय आचरण करे। हे देवी! इस रीति से पतिव्रता नारी को सबकी हितकारिणी होना चाहिए।४०।

सम्पत्ति और विपत्ति के दोनों समयों में समान भावना रखते हुए पुण्य रूप से धैर्य धारण करके सर्वदा अपने पति के हित करने वाली बनकर सती नारी को रहना उचित है ।४१। पतिव्रत पालन करने वाली नारी घर में घृत, तेल और लवण आदि अत्यावश्यक वस्तुओं के न रहने पर 'कुछ भी नहीं है' ऐसे वचन पति से कहे और किसी श्रम के कार्य में कभी स्वामी की नियुक्ति नहीं करें ।४२।

विधेर्विष्णोर्हराद्वापि पतिरेकोऽधिको मतः ।
पतिव्रताया देवेशि स्वपतिः शिव एव च ।४३।
व्रतोपवासनियमं पतिमुल्लंघ्य याऽऽचरेत् ।
आयुष्यं हरते भर्तुर्मृता निरयमृच्छति ।४४।
उक्ता प्रत्युत्तरं दद्याद्या नारी क्रोधतत्परा ।
सरमा जायते ग्रामे शृगाली निर्जने वने ।४५।
उच्चासनं न रेवेत न व्रजेद्दुष्टसन्निधौ ।
न च कातरवाक्यानि वदेन्नारी पतिं क्वचित् ।४६।
अपवादं न च ब्रूयात्कलहं दूरतस्त्यजेत् ।
गुरूणां सन्निधौ क्वापि नोच्चैर्ब्रूयान्न वै हसेत् ।४७।
बाह्यादायान्तमालोक्य त्वरितान्नजलाशनैः ।
ताम्बूलैर्वसनैश्चापि पादसंवाहनादिभिः ।४८।
तथैव चाटुवचनैः खेदसन्नोदनैः परैः ।
या प्रियं प्रीणयेत्प्रीता त्रिलोकी प्रीणिता तया ।४९।

हे देवी ! स्त्री के लिए उसका स्वामी ब्रह्मा, विष्णु और शिव से भी कहीं विशेष बतलाया गया है । अतएव पतिव्रता नारी को अपना स्वामी सर्वदा शिव स्वरूप में ही मानना चाहिए ।४३। जो भी नारी पति के आदेश का उल्लंघन करके व्रत, उपवास आदि धर्म के कृत्य किया करती है या कुछ नियम लिया करती है वह अपने पति की आयु का अपहरण ही किया करती है और मृत्यु के पश्चात् घोर नरक की यातना सहती है ।४४। जो स्त्री क्रोधावेश में आकर अपने स्वामी को चाहे जो उत्तर-प्रत्युत्तर दिया करती है वह दूसरे जन्म में किसी गाँव की कुतिया

या निर्जन वन की गीदड़ हुआ करती है ।४५। स्त्री को अपने पति से किसी भी उच्च स्थान पर नहीं बैठना चाहिए और किसी भी दुष्ट व्यक्ति के समीप में नहीं जावे तथा स्वामी से कभी कोई कातर वचन नहीं कहे ।४६। पतिव्रता नारी का कर्तव्य है कि वह कभी पति की निन्दा न करे, क्लेश के करने वाले कार्य दूर से ही त्याग दे, अपने पूज्य जनों के सामने ऊँची आवाज में जोर से न बोले और उच्च स्वर में कभी न हँसे ।४७। जब भी कभी पति कहीं बाहिर से आवे तो उन्हें देखने के साथ ही तुरन्त सामने होकर पद-प्रक्षालन के पश्चात् भोजन, जल ताम्बूल और वस्त्रादि समर्पित कर पूर्ण सत्कार करना चाहिए ।४८। इस तरह मंजु और मधुर वचन कह कर एव व्यंजन द्वारा पति का पसीना सुखाती हुई जो नारी अपने पति को सुखी तथा प्रसन्न करती है उसने त्रैलोक्य जीत लिया है ।४९।

मितं ददाति जनको मितं भ्राता मितं सुतः ।
अमितस्य हि दातारं भर्तारं पूज्येत्सदा ।५०।
भर्ता देवो गुरुभर्ता धर्मतीर्थव्रतानि च ।
तस्मात्सर्वं परित्यज्य पतिमेकं समर्चयेत् ।५१।
या भर्तारम्परित्यज्य रहश्चरति दुर्मतिः ।
उलूकी जायते क्रूरा वृक्षकोटरशायिनी ।५२।
ताडिता ताडितुं चेच्छेत्सा व्याघ्री वृषदंशिका ।
कटाक्षयति यान्यं वै केकराक्षी तु सा भवेत् ।५३।
या भर्तारम्परित्यज्य मिष्टमश्नाति केवलम् ।
ग्रामे वा सूकरी भूयाद्वल्गुर्वापि स्वविड्भुजा ।५४।
या तुं कृत्य प्रियम्ब्रूयान्मूका सा जायते खलु ।
या सपत्नीं सदेर्ष्येत दुर्भगा सा पुनः पुनः ।५५।
दृष्टि विलुप्य भर्त्तुर्या कञ्चिदन्यं समीक्षते ।
काणा च विमुखी चापि कुरूपापि च जायते ।५६।

स्त्री के माता-पिता, भाई और पुत्रादि सब सीमित सुख ही देते हैं, पति ही उसे अपरिमित सुख देता है। अतः उसकी सर्वदा पूजा करे

।५०। हे देवी ! नारी के लिए पति ही देवता, गुरु, धर्म, तीर्थ और व्रत सब कुछ है । इसलिए अन्य सबको त्याग कर एक मात्र अपने स्वामी ही की अर्चनोपासना तन, मन से करे ।५१। जो दुष्ट बुद्धि वाली अपने वन्दनीय पति को छोड़कर एकान्त में अन्य पुरुष के समीप जाती है वृक्ष की खोंतर में निवास करने वाली उलूकी होती है ।५२। स्वामी से प्रताड़ित होकर जो स्त्री पति को मारने को दौड़ती है वह दूसरे जन्म में बाघिन और वृषदंशिका का शरीर धारण करती है । स्वामी को कुटिलतापूर्ण नेत्र से देखने वाली केकराक्षी होती है ।५३। स्वामी से बचाकर स्वयं मिष्ठान्न खाती हैं वह ग्राम शूकरी या छागी अपनी विष्टा खाने वाली होती है ।५४। जो अपने पति को "तू" कहती है वह अगले जन्म में गूंगी होती है और जो अपनी सपत्नी से ईर्ष्या रखती है वह बारम्बार भाग्यहीना होती है ।५५। जो अपने स्वामी से आँख चुरा कर किसी पर पुरुष को देखती है वह कानी, बुरे मुख वाली और रूपसौन्दर्य से हीन होती है ।५६।

जीवहीनो यथा देह क्षणादशुचितां व्रजेत् ।
भर्तृहीना तथा योषित्सुस्नाताप्यशुचिः सदा ।५७।
सा त्रन्या जननी लोके स धन्यो जनकः पिता ।
धन्यः स च पतिर्यस्य गृहे देवी पतिव्रता ।५८।
पितृवंश्याः मातृवंश्याः पतिवंश्यास्त्रयस्त्रया ।
पतिव्रतायाः पुण्येन स्वर्गे सोख्यानि भुंजते ।५९।
शीलभङ्गेन दुर्वृत्ताः पातयन्ति कुलत्रयम् ।
पितुर्मातुस्तथा पत्युरिहामुत्रापि दुःखिता ।६०।
पतिव्रतायश्चरणो यत्र यत्र स्पृशेद्भुवम् ।
तत्र तत्र भवेत्सा हि पापहन्त्री सुपावनी ।६१।
विभुः पतिव्रता स्पर्शं कुरुते भानुमानपि ।
सोमो गन्धर्वहश्चापि स्वपावित्र्याय नान्यथा ।६२।
आपः पतिव्रतास्पर्शमभिलष्यन्ति सर्वदा ।
शद्य जाड्यविनाशो नो जातस्त्वद्यान्यपावनाः ।६३।

हे देवी ! जैसे जीवात्मा के निकल जाने पर मानव देह एक क्षण में ही अपवित्र हो जाता है वैसे ही अपने स्वामी के बिना स्नान करने घर भी स्त्री अशुचि ही रहती है ।५७। पतिव्रता स्त्री के माता-पिता और पति भी स्वयं परम धन्य होते है ।५८। पतिव्रता नारी के पुण्य-प्रभाव से माता-पिता और पति के वंश में तीन-तीन पुरुष स्वर्ग के सुख का उपयोग करते हैं ।५६। स्त्री अपने शील का भंग करने पर लोक परलोक दोनों जगह दुःख भोगती और माता-पिता और पति के तीनों कुलों को नरक में ले जाती है ।६०। हे देवी ! पतिव्रत धर्म का अनिर्वचनीय महत्त्व है । पतिव्रता नारी के चरण पृथ्वी पर जहाँ भी पड़ते हैं वहीं वह पापों का हरण कर पवित्र किया करती है ।६१। सर्वत्र व्यापक सूर्य, चंद्र और पवन देव भी अपने आपको पवित्र बनाने के लिए पतिव्रता नारी के शरीर का स्पर्श करने के इच्छुक होते हैं ।६२। सब की शुद्धि करने वाला जल भी सर्वदा पतिव्रता के अङ्ग का स्पर्श करना चाहता है, जिससे वह अपनी जड़ता का नाश करें ।६३।

भार्या मूलं गृहस्थस्य भार्या मूलं सुखस्य च ।
भार्या धर्मफल वाप्त्यै भार्या सन्तानवृद्धये ।६४।
गृहे गृहे न किं नार्य्यो रूपलावन्यगर्विताः ।
परं विश्वेशभक्त्यैव लभ्यते स्त्री पतिव्रता ।६५।
परलोकस्त्वयं लोको जीयते भार्यया द्वयम् ।
देवपित्रतिथीज्यादि नाभार्यः कर्म चार्हति ।६६।
गृहस्थः स हि विज्ञेयो यस्य गेहे पतिव्रता ।
ग्रस्यतेऽन्याप्रतिदिनं राक्षस्या जारया यथा ।६७।
यथा गंगावगाहेन शरीरं पावनं भवेत् ।
तथा पतिव्रतां दृष्ट्वा सकलं पावनं भवेत् ।६८।
न गङ्गया तया भेदो या नारा पति देवता ।
उमाशिवसमौ साक्षात्तस्मात्तौ पूजयेद्बुधः ।६९।
तारः पतिः श्रुतिर्नारी क्षमा सा स स्वयं तपः ।
फलम्पतिः सत्क्रिया सा धन्यौ तौ दम्पती शिवे ।७०।

जगत् में पतिव्रता पत्नी ही गार्हस्थ्य और सुख का मूल है। धर्म के फल की प्राप्ति और सुसन्तति के लिए भार्या ही साधन स्वरूप होती है।६४। यों तो रूप-लावण्य एवं सौन्दर्य से संयुत अनेक घरों में बहुत-सी स्त्रियाँ विद्यमान हैं किन्तु भगवान् शंकर की कृपा एवं भक्ति पतिव्रता नारी को ही सुलभ हुआ करती है।६५। जगत् में भार्या ही के द्वारा सच्चासुख एवं महान् विजय प्राप्त होते हैं। पत्नी के अभाव में देव, पितृ-गण, अतिथि आदि का अर्चन एवं सत्कार तथा यज्ञ-कर्म नहीं हो सकते हैं।६६। सही अर्थ में उसी व्यक्ति को गृहस्थाश्रमी मानना चाहिए जिसके घर पतिव्रता पत्नी है। वैसे तो स्त्रियाँ सबकी ही होती हैं जो अहर्निश जरा राक्षसी के तुल्य ग्रास करती रहती हैं।६७। जिस प्रकार पुण्य सलिला देव-नदी गंगा के अवगाहन करने से शरीर पवित्र हो जाता है वैसे ही पतिव्रता नारी के केवल दर्शन मात्र से ही सब पवित्र हो जाया करते हैं।६८। पतिव्रता स्त्री और भागीरथी में कुछ भी अन्तर नहीं है। शिव और भवानी के समान वे दोनों ही स्त्री पुरुष हैं। अतएव मनीषी मानव को उनका निरन्तर अर्चन करना चाहिए।५९। यदि पति ओंकार है तो स्त्री वेदश्रुति है। यदि स्त्री क्षमारूपिणी है तो पुरुष तपोरूप है। यदि पति फल है तो स्त्री सत्क्रिया है। हे पार्वती! जो ऐसे हैं वे दोनों ही स्त्री पुरुष महाधान्य हैं।७०।

एवम्पतिव्रताधर्मो वर्णितस्ते गिरीन्द्रजे।
तद्भेदान् शृणु सुप्रीत्या सावधानतयाऽद्य मे।७१।
चतुर्विधास्ताः कथिता नार्यो देवि पतिव्रताः।
उत्तमादिविभेदेन स्मरतां पापहारिकाः।७२।
उत्तमा मध्यमा चैव निकृष्टातिनिकृष्टिका।
ब्रुवे तासां लक्षणानि सावधानतया शृणु।७३।
स्वप्नेऽपि यन्मनो नित्यं स्वपतिं पश्यति ध्रुवम्।
नान्यं परपतिं भद्रे उत्तमा सा प्रकीर्तिता।७४।
या पितृभ्रातृसुतवत परम्पश्यति सद्धिया।
माध्यमा सा हि कथिता शैलजे वै पतिव्रता।७५।